"ज्ञानधाम" ग्रन्थावली १

आवारागर्द

[मनोवैज्ञानिक कहानी संग्रह]

लेखक
आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री

प्रभात-प्रकाशन
दरीबा कलां-दिल्ली

कहानी-सूची

१	आवारागर्द	५
२	तिकडम	१८
३	डाक्टर साहब की घड़ी	२८
४	मरम्मत	३८
५	चिट्ठी की दोस्ती	६२
६	तसवीर	७
७	तेरह बरस बाद	८८
८	जापानी दासी	९१
९	हेर फेर	९९
१०	वह कहे तो	१११

मूल्य डेढ़ रुपया मात्र

प्रकाशक	प्रथमबार	मुद्रक
नेमचन्द जैन 'अग्र'	मई	जय्यद प्रेस,
प्रभात प्रकाशन के	१	बल्लीमारान,
लिए साहित्य मंडल	९	दिल्ली.
दिल्ली द्वारा प्रकाशित	४	
	६	

प्रकाशक की ओर से—

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री हिन्दी साहित्य के सिद्धहस्त कलाकार हैं। आपकी देन हिन्दी भारती मे अमर है। आपने हमसे बराबर लिख कर देने का वादा किया है। और आपकी लेखनी रोज नवीन रचना रत्न प्रसूत कर रही है। जो रचना आचार्य अब दे रहे है, वह है एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक उपन्यास 'ईदो'। जिसमे जापान के शाही वैभव और सुभाष बोस तथा आइ० एन० ए० व गत् महायुद्ध की कूटनैतिक बातों का रहस्य भरा है। इसके लिए आचार्य ने गत् नव वर्ष तक दुनिया की गति विधि का अध्ययन किया है। यह रचना हम पाठकों को जुलाई तक देने के सब सम्भव प्रयत्न करेंगे।

प्रस्तुत कहानी संग्रह मे आचार्य की मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। जो समाज से उपेक्षितों के जीवन पर लिखी गई हैं। आप इन्हें पढ़ कर सोचेंगे यह क्या है? क्यों है? और इस समस्या का हल क्या है?

हमे विश्वास है ये कहानियां आपको अध्ययन, मनोरंजन और मनन का साधन प्रस्तुत करेंगी।

विनीत

नेमचंद जैन 'अग्र'

साहित्य और साहित्यकार

"साहित्य कलाका चरम विकास है और समाज का मेरुदण्ड। धर्म और राजनीति का वह प्राण है, इस लिए इसमें दो गुण होने अनिवार्य हैं, एक यह कि वह आधुनिकता का प्रतिनिधित्त्व करे और दूसरे, वह मानवता के धरातल को ऊंचा करे।

सामर्थ्यवान्काल—जैसे जगत के सब तत्त्वों को दूषित करता है, उसी भांति उसने साहित्य को दूषित किया है। इसी से साहित्य ने मानव का हनन किया। उसी भांति, जैसे विज्ञान ने मानव प्राणों का। और यह कारण है कि साहित्य और विज्ञान के इस उद्ग्रीव युग में मानव भौतिक और आधिभौतिक विभूतियों का रहस्यविद् होने पर भी अपने चिरजीवन मे सर्वाधिक असहाय और भयभीत है।

साहित्य और विज्ञान ही उसे अभयदान कर आप्यायित कर सकता है, यदि वह अपना लक्ष्य मानवता के धरातल को ऊंचा करना बनालें।

मानव विश्व की सब से बड़ी इकाई है। परन्तु साहित्यकार मानव नहीं, क्योंकि वह अति मानव का निर्माण करता है। वास्तव मे साहित्यकार महामानव है!

इसलिए उसका कोई अपना देश, धर्म राष्ट्र, समाज और स्वार्थ नहीं है और इन सबके प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं है।

उसका काम है निरंतर अतिमानवों का निर्माण करना और मानव आदर्श के लक्ष्य बिन्दु पर उनकी स्थापना करना। यह करने ही से वह मानवता के धरातल को ऊंचा करने मे समर्थ हो सकता है।"

चतुरसेन

आवारागर्द

जो आवारागर्द नहीं, उन्हें आवारागर्दी के मजे कैसे समझाए जाएँ। लोग सभ्य हैं, इज्जत-आबरू-वाले हैं, उनकी समाज में पद मर्यादा है, बहुत लोग उन्हें जानते हैं, वे यदि आवारागर्दी के चक्कर में पड़े, तो बस, सब खत्म। उनका रुआब उठ जाय, प्रतिष्ठा धूल में मिल जाय, और देखनेवालों की नज़र से वे गिर जाय।

परन्तु मेरी बात ही निराली है। वह निरालापन आवारागर्दी मे ही आ जाता है। बात यह है, न मेरी समाज मे कोई इज्ज़त है न कोई मेरा मुलाक़ाती दोस्त है, न कही मेरा घर-बार, ज़मीन-जायदाद है, न नौकरी, न लीडरी। न मै कवि, न सपादक। मै महज़ आवारागर्द हूँ जिधर मुँह उठा, चल दिया, जहाँ भूख लगी, खा लिया, जहाँ थक गया, सो गया, जो चीज़ चाही, माँगली; मौका मिला, चुराली, गरज़ जैसे बने, जीवन की गाड़ी चलाए

जाना, दुःख शोक, चिता और निराशा को पास न फटकने देना मेरी आवारागर्दी का ख़ास रूप है, औरों की और जानें।

मन में जो सनक समाई, तो काश्मीर जा पहुँचा। कैसे? यह आप सभ्य पुरुष न समझ पाएंगे। फिर भी संक्षेप में सुनिए— रेल में पूरा सफर किया बिना टिकिट। अक्सर टिकिट-चेकर को चकमे दिए--कभी पखाने में घुसकर और कभी दूसरी ओर आँख बचाकर, कूदकर। कभी पकड़े भी गए,तो हँस दिये, जेबें उलटकर दिखा दी। किसी ने गालियां देकर छोड़ दिया, किसी ने गर्दनिया देकर उतार दिया, किसी ने पुलिस के हवाले किया। मैं जानता हूँ, दुनियां में पद-पद पर विघ्न आते हैं, पर धुन के पक्के लोगों के सामने वे ठहर नहीं पाते। मेरे सामने भी ये विघ्न न ठहर सके। सिर्फ इतना हुआ, दो-चार दिन देर करके पिंडी जा उतरा। आधी मंज़िल फतह हो गई। वहाँ से चला पैदल। रास्ते-भर चट्टियों पर दूध, दही, पूरी और चाय-पानी का सामान बिक रहा था, पर अपने पास तो पैसा नही था। जब किसी भारी-भरकम को खाते देखता, सामने जाकर मुस्करा देता, और वह मुझे प्रायः खिलापिला देता। कभी गाकर, कभी हाथ देखकर पैसे बनाए। एक-दो बार बोझा भी ढोया, और सिर्फ एक बार चोरी की। आधा रास्ता पार हो गया।

एक दूकान पर बैठा गर्मागर्म पूरी-तरकारी उड़ा रहा था। सात पैसे जेब में थे, उनमें से छः पैसे की पूरी और सातवें का पान खा डालने का इरादा था। एक आदमी घबरा कर आया, और दूकानदार से पूछने लगा—"क्या पास में कोई दवा-दारू की दूकान है? हमारे सेठ खड्ड में गिर गए हैं, हड्डी-पसली चूर-चूर हो गई है। पास में कोई डाक्टर हो, तो फीस चाहे जो देनी पड़े, उसे बुलवा दीजिए।"

आदमी नवयुवक था। टूटी-फूटी हिंदी बोल रहा था। मैंने

धीरे से दूकानदार से कहा "कहीं इस गधे से यह मत वता देना कि हम डॉक्टर हैं, नाहक़ हमें अटकना पड़ेगा। आए हैं तफरीह को, और वला सिर पड़ेगी। अरे भाई, नाक में दम है इन मरीज़ों के मारे, कमवख्त यहाँ भी दम नहीं लेने देते।"

दूकानदार ने क्षण-भर गौर से देखा, और यथा संभव आदर प्रदर्शन करके कहा—"डॉक्टर साहब, अव इस मुसीवत में तो इस वेचारे की मदद कर ही दीजिए।" फिर उसने ज़ोर से युवक से कहा—"भाग्य की वात समझो कि डॉक्टर सामने वैठे हैं।"

युवक एकदम पास आकर मिन्नत करने लगा। मैंने कहा—"तो बुखार की तरह सिर पर क्यों चढ़े आते हो? वावा, खा तो लेने दो, घवराओ मत; जाओ, कह दो—'डॉक्टर साहव आते हैं।' चुटकी वजाते सव ठीक हो जायगा।"

तसल्ली पाकर युवक दौड़ गया। मैं सोचने लगा—अव डॉक्टरी धज वनाई जाय तो कैसे? मैला, फटा कोट, धूल-भरे पैर, दवा न दारू, और डॉक्टरी तो सात पीढ़ी ने न की थी। कॉलेज में जव पढ़ते थे, स्काउटिंग में नाम लिखा लिया था, पास में काम की चीज़ सिर्फ एक वेसलीन की शीशी थी, मैंने उसी से तमाम मतलव हल करने की ठान ली,

जाकर देखा, कुछ चोट-ओट नहीं आई थी—न घाव हुआ न हड्डी टूटी, यों ही जरा खाल छिल गई थी, जितनीगंभीरता धारण की जा सकती थी, धारण करके मरीज देखा—कपड़ा मँगाकर पट्टियाँ वनाईं, और जरा-सी वेसलीन चुपड़कर लपेट दी, वाद में डॉक्टरी धज से सावुन से हाथ धोकर चल देने की ठानी, इतमीनान हुआ कि ५ रुपए अभी जेव में खनखना उठेंगे, श्रीनगर तक का चाय-पानी हो जायगा।

परंतु सेठ कोई गुजराती गावदी था। हाथ जोड़कर बोला-

"बैठ जाइए, डाक्टर साहब, अब आप जा नहीं पावेंगे। आपको साथ चलना होगा। आपके आराम की पूरी व्यवस्था हो जायगी।

जै गंगा। थोड़ा नखरा करके मै राजी होगया। सवारी, कपड़े,चाय, टोस्ट, मक्खन, खाना, सब जुट गए। काशमीर मे मजे की कटने लगी।

२

एक दिन सध्या-समय एक सकरी गली के सामने झूमता हुआ जा रहा था। क्यों? यह आप समझ जाइए। बदनाम मुहल्ला था, कभी-कभी उधर से यों ही घूम आया करता था। थोड़ी तबियत में गुदगुदी ही पैदा हो जाती थी। यहां और तो सब मौज-बहार थी, पर नकद नारायण जेब में न था, सेठ से कभी मांगा नही। और तिकड़म सब छोड़ दी थी। इसी से सिर्फ उधर घूमना मात्र ही हो जाता था, और कुछ नहीं।

हॉ, तो मै एक सकरी गली के सामने झूमता हुआ जा रहा था। संध्या के धुंधले प्रकाश मे देखा—एक पुराने, छोटे-से मकान की दहलीज़ पर एक श्वेत-बसना स्त्री खड़ी एक बाबू से बाते कर रही है। अंधेरे में ठीक-ठीक उसकी आयु और सुन्दरता नहीं भांपी जा सकी। परन्तु ज्यों ही मेरी दृष्टि उस पर पड़ी, बाबू ने उस से कहा—"नमस्ते" और उसने भी हाथ जोड़ कर नमस्ते कहा। बाबू चल दिए। मगर उस स्त्री ने जो नमस्ते शब्द कहा, उसकी झंकार ने मेरे शरीर मे रोमाच कर कर दिया, कुछ विचित्र मधुर स्वर था, फिर मैंने सोचा—इस बदनाम, गंदी गली मे 'यह शुद्ध नमस्ते' कैसा?

मैंने मुंह उठा कर देखा— वह घर के भीतर लौट रही थी, मैने साहस किया—एक कदम आगे बढ़कर कहा—"नमस्ते"

वह लौटी, और आश्चर्य-चकित मेरी ओर उस अँधेरे में देखने लगी। मैने और निकट जाकर कहा—"आपने पहचाना

नहीं—मैं डाक्टर हूँ।" मैने ढेला फेंका।

उसने भुनभुनाकर होंठों ही मे कहा—'डाक्टर'। फिर उसने सिर का पल्ला ठीक किया, हाथ जोड़कर उसी मधुर स्वर से नमस्ते किया, और उससे भी अधिक मीठे स्वर मे कहा—"आइए, भीतर आइए डाक्टर साहब!"

और, फिर हम एकदम मकान के भीतर। दरवाजे की कुंडी बंद कर दी गई। घर छोटा और साधारण था, पर साफ और सुरुचि-पूर्ण। कमरे में एक शतरञ्जी बिछी थी—कोने में पलँग था। दीवार से लगा एक लैंप टिमटिमा रहा था। शतरञ्जी पर बैठूं या पलँग पर, यह निर्णय नहीं कर सका। उस पीली, धुँधली रोशनी मे मैंने फिर उसकी ओर देखा—एक दुबली-पतली, सुन्दर, छरहरी युवती थी। उम्र बीस से ऊपर होगी। बरबादी और वेदना की छाप उसकी आँखों और होठों पर थी।

उसने आगे बढ़कर, पलँग की ओर इशारा करके कहा—"बैठिए।" सिर से टोपी उतारकर खूटी पर टाँग दी, बेत हाथ से लेकर एक कोने मे रख दिया। फिर कहा "कोट उतारकर इतमीनान से बैठिए। इस वक्त कुछ गर्मी है, और आप बाहर से आए हैं। ठहरिए, खिड़की खोले देती हूँ। आप इतमीनान से बैठिए।"

मै कोट उतारकर इतमीनान से बैठ गया। उसने खिड़कियाँ खोलीं, लैंप जरा तेज़ किया, दो अगर-बत्तियाँ जलाईं, और चुपचाप पैरों के पास फर्श पर बैठ गई।

अभी दो मिनट भी न बीते थे कि ऐसा मालूम हुआ कि आवारागर्दी खत्म हो गई। मानो चिरकाल बाद शरीर और मन थकाकर अब घर लौटा हूँ, हालाँकि पृथ्वी के इस छोर से उस छोर तक मेरा कहीं घर था ही नहीं।

मेरा मुंह बद था। सोच रहा था, कौन है यह दुखिया,

सुशीला स्त्री। इतनी मधुर, इतनी स्त्री-गुणों से विभूषित। परन्तु क्या उससे पूछूं कि तुम कौन हो? इतनी आत्मीयता से परिपूर्ण स्वागत पाने पर भी। मैं चुप ही रहा। कभी उसे, कभी घर को घूर-घूरकर देखता रहा। उसने कहा—"चश्मा क्या हर वक्त लगाते हो—! क्या रात मे बुरा नहीं मालूम होता?" उसने हाथ बढ़ाकर चश्मा आँखों से उतार लिया। गौर से आँखों को देखा—हथेली से आँखें दबाईं। ओह! कितनी कोमल थीं वह हथेली।

मैंने दोनों हाथों से उसका हाथ थामकर कहा—"खूब मिलीं दोस्त।"

"तो क्या आप मुझे ढूंढ रहे थे?"

"अजी तीन दिन से।" मैंने अटकल-पच्चू कहा।

"आपको यह मालूम कैसे हुआ कि मै आ गई हूँ।"

मैंने शान से कहा—"वाह, यह भी कोई बात है, आप यहाँ आवें, और मुझे न मालूम हो।"

वह गौर से देखने लगी। शायद यह भाँपने के लिये कि यह इतनी आत्मीयता से बातें करनेवाला है कौन, और मैं उसके मनोभाव समझकर मुस्कराने लगा।

एकाएक मैंने कहा—"वहाँ फर्श पर क्यों बैठी हो, यहाँ बैठो।" मैंने हाथ पकड़कर खींचा। उसने मेरे घुटनों पर सिर रखकर वेदना से टूटे स्वर मे कहा—"तुमने सुना तो होगा, साहब अब नहीं रहे। एक महीना हुआ, हार्ट फ़ेल हो गया। मरने से दो-चार दिन पहले तो चिट्ठी आई थी—पढ़ो तो, देखो, क्या लिखा है।"

वह लपक कर उठी, एक पुलिंदा बहुत-सी चिट्ठियों का रूमाल मे बंधा था, उठाकर खोला–एक खत निकालकर पढ़ा—"मेरी

परम प्यारी, प्राणों की दुलारी·····" फिर कहा—"आप खुद पढ़िये"

मैंने आगे पढ़ना शुरू किया—"तुम राज़ी-खुशी काश्मीर.. " उसने बाधा देकर पत्र को दोनों हाथों से ढांप लिया, और ऊपर की पंक्ति पर मेरी उंगली रखकर कहा—"यहां से पढ़िये"

मैंने पढ़ा—"मेरी परम प्यारी, प्राणों की दुलारी।" उसने मेरे साथ प्रत्येक अक्षर को दुहराया, उसकी आँखों से आँसुओं की धार वह चली, और वह फिर मेरे घुटनों पर सिर रख कर सिसकने लगी,

मैं घपले में पड़ गया, सच कहूँ, मैं इतना द्रवीभूत होगया कि उसकी पीठ और सिर पर हाथ फेरने लगा, कुछ देर बाद मैंने कहा—"लाओ, चिट्ठी पढ़ूं तो।" उसने चिट्ठी मोड़कर कहा—"मत पढ़ो—मत पढ़ो—मैं सुन नहीं सकती, जिन्होंने लिखी थी, वह अब नहीं हैं, उन्होंने इतने खत लिखे हैं, गिनकर देखो, कितने हैं, पर अब नहीं लिखेंगे, 'उसने ऊपर मुंह उठाया—टपाटप आँसू गिर रहे थे, होंठ काँप रहे थे, उसने घुटनों के वल उकसकर अपने को मेरी गोद में डाल दिया,

उस सुखद अनुभूति का कैसे वर्णन करूँ, उसके केश-गुच्छ में खोंसे हुए फूल की सुगंध से, उसके प्रेमी हृदय के हाहाकार से, उसके कोमल गात्र के आलिंगन से जैसे मैं अपने ही में मूर्च्छित होगया। मैंने सोचा—क्या यह मुझे अपना कोई पूर्वपरिचित समझती है, या इसे होश-हवास ही नहीं, मैंने भी तो अपनी बातों से उसे खूब मुगालते में डाला, खत में मैंने उसका नाम पढ़ लिया था—रुक्मिणी।

मैंने आर्द्र स्वर से कहा—"रुक्मिणी, इतना रंज न करो, जो चला गया, उस पर सब्र करो, और जो मिल गया, उसके लिये ईश्वर को धन्यवाद दो।"

मैने एक वासना से ललचाई दृष्टि उसके शोक-कातर मुख पर डाली। उसने आँसू पोंछ डाले । चुपचाप चिट्ठियाँ इकट्ठी करके गाँठ बाँधी, और फिर उठकर दूसरे कमरे मे चली गई। क्षण-भर बाद आकर फिर बोली "कुछ पियोगे ?"

मैंने वास्तविक अर्थ न समझ कर कहा "नहीं, प्यास नही है।"

उसने क्षण-भर ठहर कर कहा "कुछ पीते हो या नहीं ?"

मै अब समझा, और कहा "नही कभी नहीं पीता।"

उसने और निकट आकर कहा "खर्च नही करना होगा, घर मे है। लाऊँ—थोड़ी पियो।"

इतनी देर बाद मुझे स्मरण आया कि यहाँ जो मै बेफिक्री से पलंग पर बैठा शाही ठाठ से बाते कर रहा हूँ, सो गाँठ में तो फूटा पैसा भी नहीं। अब यहाँ से बिना कुछ दिए जाना कितना जलील काम होगा। यह सोचते ही मै एकदम उठ खडा हुआ, और कहा—"अच्छा, अब चला, फिर कभी आऊँगा।"

उसने मृदुल स्वर मे कहा—"यही हाल उनका था। कभी नहीं पीते थे, पीने को कहती थी, तो उठ कर चल देते थे। अच्छा, मत पियो, मगर जाओ मत । नाराज़ मत हो।" और वह एकदम आगे बढ़ कर मेरे ऊपर गिर पड़ी, जैसे बहुत-सी फूल-मालाएँ किसी ने ऊपर फेक दी हों । और, मैंने आत्मविस्मृत होकर उसे कसकर छाती से लगा लिया। मैंने तन-मन से द्रवित होकर कहा—"इतना दर्द, इतना दुःख, इतना प्रेम लिए तुम इस गदे घर मे बैठी हो सजनी।", और फिर मैंने उसके अनगिनत चुम्बन ले डाले। शिथिल-गात होकर मै पलंग पर पड़ रहा। उसने धीरे से मेरे बाहु-पाश से पृथक् होकर कहा—"नाराज़ मत होना— तुम इजाज़त दो, तो मै ज़रा-सी पीलूँ। न पिऊँगी, तो तुम से बात भी न कर सकूँगी।

मैंने कहा—"पियो मैं नाराज़ नहीं हूँ।"

पीकर जब वह आई, तो मुस्करा रही थी, आवाज़ करारी थी, शरीर में फुर्ती थी। उसने कहा— "बीड़ियाँ तो हैं, क्या सिगरेट मँगाऊँ ?"

"कैसे कहूँ कि मँगाओ।" मेरे पास तो पैसे न थे। मैंने कहा—"मगर मैं तो पीता-खाता नहीं।"

"इसका मतलब यह कि एकदम संत हो गए हो।" उसने लड़के को आवाज देकर बुलाया। एक रुपया उसे देकर कहा—"कैंची की सिगरेट एक पैकेट, माचिस और पान ले आ।" मैं चुपचाप देखता रहा।

धीरे-धीरे जैसे मैं जगत् को भूल गया, अपने को भूल गया, रात को भूल गया, दिन को भूल गया। अपने को मैंने चुपचाप पलँग पर डाल दिया—शिथिल-गात और मूर्छित मन।

उसने सिगरेट निकाल कर मेरे होंठों में लगा दी, और फिर जला दी। धीरे से सिर ऊँचा करके एक छोटा-सा तकिया नीचे रख दिया। दो पान के बीड़े मुँह में रख दिए। उसने फिर अगर-वत्तियाँ कमरे में जलाईं। चारों तरफ देखा, मेरे आराम के लिये जो कुछ किया जा सकता है, वह उसने सब कर दिया या नहीं। फिर वह कमरे के बाहर गई। मैं समझ गया, वह पीने गई है, अपना दर्द दूर करने के लिये। क्षण-भर बाद वह आई, और मेरे पैरों को गोद में लेकर बैठ गई। उसकी कोमल हथेलियों का सुखद स्पर्श प्राणों को हरा करने लगा। मैं चुप था—वह भी चुप थी—लैंप धीरे-धीरे टिमटिमा रहा था। रात का सन्नाटा बढ़ रहा। ऐसा प्रतीत होता था, अन्धकार से व्याप्त इस भूमण्डल पर केवल वह छोटा-सा घर ही आलोक की रेखा बखेर रहा है। और, नक्षत्र-लोक में केवल दो प्राणी ही जीवित हैं, मैं और वह। और, हम दोनों अटूट सुख-सागर में डूब गए हैं।

मैं तो पहले ही अपनी आवारागर्दी की बात कह चुका हूँ। कहने को एक ही बात रह गई थी, वह यह कि स्त्री से यथार्थ परिचय जीवन मे नहीं हुआ था। और, अब मैं सोच भी न सकता था कि स्त्री क्या है, उसका मूल्य क्या हैं।

एकाएक मैं जैसे चौंक उठा। मैंने कहा "अब जाऊँगा मै।"

उसने जैसे भयभीत होकर नेत्रों मे कहा "कहाँ? क्यों?"

मैंने कहा "मैंने अभी खाना भी नहीं खाया है, माहराज बाट तकता होगा।"

"आह! तब तुमने कहा क्यों नही। खाना मैं मगवाती हूँ।" और, लाख मना करने भी उसने खाना मँगवाया। मेरे सामने थाल रखकर वह पखा ले बैठी। मैंने "यह नहीं, तुम्हें खाना होगा मेरे साथ।"

उसने कहा "तो पियो फिर तुम भी।" उसके नेत्रो मे एक गहरी वेदना थी। मैंने सहमति दी, और जीवन का दूसरा अध्याय शुरू हुआ। कौन उसे सोच सकता है। एक आवारागर्द के जीवन का दूसरा अध्याय—लोग जिसे सुहागरात कहते है। सचमुच वही।

और प्रातःकाल—जब आँखों मे शराब और नींद की खुमारी बढ़ रही थी, पैर लड़खड़ा रहे थे, शरीर झूम रहा था। अभी अधेरा था, उसने मुझे चूमा, कोट मेरे कंधो पर डाला। दोनों हाथों मे हाथ लेकर हंसी, और फिर कहा "नमस्ते।"

इतना तो मुझे होश था कि मै खाली, बिना कुछ दिए, जा रहा हूँ। मै लाज से मरा जा रहा था, पर मैंने कुछ कहा नहीं। दो कदम आगे बढ़ाए। वह हाथ मे हाथ दिए साथ थी। उसने कान में होंठ लगाकर कहा "कल जल्द आना।"

और, फिर उसने द्वार पर आकर एक बार नमस्ते किया। वह हँसी, उसका पीला और सूखा चेहरा, वेदना-पूर्ण, गहन आँखे,

उस हँसी की आभा से जैसे दिप गई।।

मैं बोला नहीं, बोल सका नहीं, उसी भाँति लड़खड़ाता हुआ—ऊषा से अलोकित एकांत सड़क पर लुढ़कता चला—जैसे स्वप्न में चल रहा होऊँ। ओह, कैसी अभूतपूर्व, सुखद रात रही वह।

[३]

दो मास ऐसे बीत गए, जैसे खेल हो गया हो। हाँ, मैंने एक पैसा भी नहीं दिया। उस नारी के हृदय का मैंने संपूर्ण अध्ययन कर डाला। उसके प्रियतम के सपूर्ण खत पढ़ डाले। वह भी डॉक्टर था, मेरे-जैसा अवारागर्द नहीं, प्रतिष्ठित सिविल सर्जन। उसके बीवी थी, बच्चे थे, उसने इस प्रेम लतिका को पत्नी की ही भाँति घर में रक्खा था। वह उसकी पत्नी के साथ खाती, सोती, रहती और पत्नी ही समझी जाती थी। उसने मुझसे एक-एक दिन की बातें कहीं। अपने छः वर्ष के स्वप्न-सुख के मधुर संस्मरण कहती हुई वह हँसी, रोई और नाची, उन्माद में आवेशित होकर।

मै दिन-भर अपने सेठ के यहां रहता—कहना चाहिए सोता, और सध्या होते ही झूमता हुआ वहाँ आता, जहाँ सुखद सेज़, गर्म खाना, उन्मादक मद्य, मृदुल नारी एक साथ ही उपस्थित थी—सब झंझटों और खटपटों से रहित। एक यत्र की भाँति मै उस सुख-सागर में डूब जाता। खाता-पीता, सिगरेट पीता, और कहने न कहने योग्य क्या-क्या करता न करता।

दिन बीतते गये, और एक बोझ मेरे हृदय पर लदता गया। मैंने उसे कभी कुछ नहीं दिया। अभागिनी, असहाय नारी मुझे कहाँ से खिलाती-पिलाती है ? कुछ देना तो होगा ही। परंतु कहाँ से ? मै जानता था, मेरा साथी सेठ कहाँ रुपए-पैसे रखता है। मै सेठानी के जेवरों के रखने की जगह भी जानता था। सब मेरा विश्वास करते थे। मेरी रात की ग़ैरहाज़री भी

सबको सह गई थी। कोई मेरे राज को जानता न था। अंत में मैंने संकल्प किया--किसी तरह यह सब रुपया चुराकर उसे दे आऊँ। संकल्प दृढ़ होता गया, और मै अवसर की ताक में लगा। अंततः एक दिन मुझे सफलता मिली। सब जेवर और रुपया लेकर मैं उसी भाँति झूमता-झामता चिर-परिचित मार्ग पर संध्या के धूमिल प्रकाश में आगे बढ़ रहा था। वह सब मैंने एक तरफ छिपा दिया, उसे मालूम नहीं हुआ। मैंने भी सोचा--बस, यही अंतिम रात है। फिर अब और नहीं। उस दिन मैंने उसे जी भर-कर प्यार किया, बहुत किया। अपना हृदय और आत्मा मैंने उसे दे दिया। पिछली रातों की भांति यह रात भी बीत चली, और ऊषा के अलोक में जब उसने हँसकर 'नमस्ते' कही, तब मैंने चुप-चाप, नीरव भाव से चिर-विदा कहा।

मैंने लौटकर नही देखा, और चला। सेठ के डेरे की ओर नहीं, लंबी, बलखाती, पेचीली पहाड़ी सड़क पर, जो नीचे की दुनिया की ओर जा रही थी। उसी आवारागर्दी के आलम में, जिसमें नया आनंद और मस्ती का झरना झर रहा था। दिन बीता, और संध्या-समय एक चट्टी पर, बाहर पड़ी बेंच पर, पड़ा हुआ मैं बीती रातों को सोच रहा था। सब कुछ सपना-सा दीख रहा था। आँखें झपते ही वह आती, देखती, प्यार करती, सिगरेट पिलाती, माथा सहलाती, परंतु आँख खुलने पर सुदूर आकाश के टिमटिमाते तारे, टूटी बेंच और अपना एकाकी अवारागर्दी जीवन।

रास्ते मे खाता, पीता, सोता, बैठता, अपनी चिर-अभ्यस्त आवारागर्दी से चला आ रहा था। एक दिन पुलिस ने मुझे पकड़ लिया। सेठजी साथ मे थे—उनके क्रोध का ठिकाना न था—बक रहे थे, और मुट्ठियाँ बाँध रहे थे। मैं हँस रहा था। एक अँगूठी मेरी उँगली में थी। उसी से पकड़ा गया। उतारना

भूल गया था। सोचा था, चलती बार उसे पहनाऊँगा। मैंने चोरी स्वीकार की, पर माल कहाँ है, नहीं बताया। मुझे पीटा गया, और भी यातनाएँ दी गईं, परंतु उन यातनाओं में, मार में कितना सुख था, कितना मज़ा था। वे यातनाएँ उस प्रिय नारी के सुखद स्पर्श, कोमल प्रेमालिंगन से कहीं अधिक अच्छी लग रही थीं। और, जब जेल की कोठरी मुझे मिली, तो उस एकांत में मैं था, और उस सजनी की जाग्रत् स्मृति। ओह, इसके बाद तो फिर हमारा न कभी बिछोह हुआ, न मिलन। मैं प्रतिक्षण एक ही बात सोचा करता हूँ—काश्मीर की उन मनोरम घाटियों में वह मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी, जीवन के अंत तक प्रतीक्षा करेगी।

तिकड़म

'अजी, हुआ यह कि एक दोस्त की शादी मे मुझे औरंगाबाद जाना पड़ा। छुट्टी नहीं मिलती थी, फिर भी कुछ तिकड़म भिड़ा कर वडे साहव को झाँसा-पट्टी दे छुट्टी वसूल ही ली। सच तो यों है. होनी खींच ले गई !"' इतना कह कर मि० रामनाथ ने एक गहरी साँस ली, और मित्रों की ओर एक वार नैराश्य-पूर्ण दृष्टि से देखकर आकाश की ओर ताकने लगे।

मित्र-मण्डल खिलखिला कर हँस पड़ा। "आपको दोस्त की शादी में जाना पड़ा, माल उड़ाने पड़े, बरात का मज़ा लूटना पड़ा। इस के लिये आप लुहार की धोंकनी की तरह साँस खींच रहे हैं. और फर्माते हैं—होनी खीच ले गई। भई वाह ! यह होनी हम गरीबों की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखती।"

मि० रामनाथ एकदम गुस्से से बौखला उठे। उन्होंने झुंझला कर हाथ की सिगरेट फैंक दी और आँखे निकाल कर दोस्तों पर बरस पड़े।

दोस्तों ने कहा—"तो कहते क्यों नही ? तुम हो तिकड़म-बाज़, कही उलझ पड़े होगे, और चाँद गरमा गई होगी, लो हम ने कह दिया। पूरब के देहाती जरा बेढब होते हैं।"

रामनाथ ने कहा—"अब सुनोगे भी या अपनी ही बके जाओगे ? पहिले दिन ब्याह हुआ, दूसरे दिन बढ़ार हुई, तीसरे दिन बिदा। बस उसी वक्त कयामत बर्पा हो गई !"

एक दोस्त ने कहा—"हम शर्त बाँधते हैं, बस हज़रत की आँखे लड़ गई —और चाँद पर......"

रामनाथ उठकर जाने लगे। दोस्तों ने मिन्नतें करके कहा—"नाराज़ मत हो यार,, सब सुना जाओ, यहाँ दोस्त लोग हैं, जान पर खेल जायेंगे। लो अब सुना दो कच्चा चिट्ठा।"

रामनाथ ने फिर एक साँस ली और कहना शुरू किया—"कोई दस बजे का समय था। बाजे बज रहे थे,दूल्हा-दुलहिन पलग पर बैठे थे, औरतों ने उन्हें घेर रखा था। कोई गा रही थी, कोई बकबाद कर रही थी। एक चकल्लस मची हुई थी। इतने मे एक बाला पर मेरी बदनसीब नज़र पड़ गई।"

"वाह दोस्त, हमने क्या कहा था," एक बोल उठा। दोस्तों ने कहा—"ज़रूर वह सैकड़ों मे एक ही होगी, फिर आपने कोई तीर-ऊर फेंका ?"

सैकड़ों मे ? म्याँ, लाखों मे।" रामनाथ ने जोश में आकर कहा। फिर कुर्ते की आस्तीने चढ़ाई और सिगरेट निकाल कर जलाई। दोस्त लोग दम रोके बैठे थे। रामनाथ बोले "बस मै देखता ही रह गया ! वह आँख, वह नाक, वह रंग, वह कद कि क्या कहूँ, किससे कहूँ, कैसे कहूँ, क्यों कर कहूँ, तुम सब गधे हो। समझोगे क्या ?"

एक ने कहा—"ठीक कहते हो भई। हम गधे इन बातों को समझ ही नही सकते। लेकिन यार, झटपट यह कह दो—कुछ इशारा किया, शेर पढ़े, बाते कीं, पुर्जा लिखा, किसी तरह अपने दिल का हाल-चाल भी उसे बताया, उसके दिल की भी जानी ?"

"कहता तो हूँ, तुम सब गधे हो। तुम होते तो यही करते और चांद पिटाते। मैंने तिकड़म से काम लिया, तिकड़म से ?"

"भई वाह, जरा हम सुने वह तिकड़म।" सब दोस्त हँसी रोक कर बैठ गये। रामनाथ ने एक कश सिगरेट का खीचा और कहा "यह तो मै कह ही चुका हूँ कि वह बड़ी ही खूबसूरत थी, उम्र १६,१७ साल की थी। वह वास्तव मे मेरे दोस्त की साली थी और अभी क्वाँरी थी।"

एक दोस्त बीच ही मे चिल्ला उठे, बोले "अरे यार, यह कहो, थी ही या अभी है? है तो फिर दोस्त के बन जाओ साढ़ू और यारों को चलने दो बारात में। लो दोस्तो, होनी आप को भी औरंगाबाद खींचने वाली है।"

सब दोस्तों ने उसे रोक कर कहा "चुप रहो भाई! बकवाद न करो। ज़रा सुनने तो दो। हाँ जी, उस तिकड़म की बात कहो अब।"

"वही तो कह रहा हू। उस वक्त तो मै जिगर पर तीर खाकर चला आया। घर आकर मैंने घर वाली का ग़ाजियाबाद रहने का बन्दोवस्त कर दिया। पूछा तो कह दिया कि 'दिल्ली की आबो-हवा खराब है। मकानों के किराये ज्यादा हैं, चीजे मँहगी हैं। नौकरों की किल्लत है', ग़रज़ हर तरह उसका दिल रख दिया। मगर दिल्ली भी मकान कायम रखा। दफ्तर से छुट्टी पाकर ग़ाजियाबाद चला आता। कभी-कभी दिल्ली रह जाता। दिल्ली मे पड़ोसियों और दोस्तों से कह दिया कि घर वाली बहुत बीमार है। परेशान हू। डाक्टरोंने आबो-हवा बदलने को कहा है।' कुछ दिन यह धन्धा चला। और एक दिन वह मर गई।"

मित्रगण एकदम चौंक पड़े "क्या मर गई? मगर बीमारी तो महज़ बहाना ही था; फिर..."

रामनाथ ने एक कश खींचकर धुँये के बादल बनाये, फिर धीरे से कहा "मतलब यह कि यहाँ दिल्ली में मशहूर कर दिया गया कि मर गई। बाकायदा क्रिया-कर्म हुये, तेरह ब्राह्मण आये और खा गये; पिता जी आये और रो-पीट गये। उसके भाई-बाप माँ भी सब दस्तूर कर गये।"

यारों की समझ में नहीं आ रहा था कि हँसे या रोयें, यह सच कह रहा है या गप उड़ा रहा है ? वे आँखें फाड-फाड़ कर रामनाथ की ओर देख रहे थे। और रामनाथ कह रहा था "इस काम से निपट कर अब ब्याह की बात चली। मैंने साफ इनकार कर दिया। दिन में तीन चार बार प्याज का टुकड़ा आँख में लगा लेता था, आँसू खूब बहते थे, आँखें सूजी रहती थीं। खाना रात को खाता था, दिन में सिर्फ चटाई पर पड़ा रहता था। बलदेव से पूछिये ना, यह तो रोज ही आता था। बेवकूफ, यह भी मेरे साथ रोता था। बाजार से मिठाई ला-ला कर खिलाना चाहता, सिनेमा ले जाना चाहता, मगर मैं था कि चटाइ से उठना हराम समझता था।"

बलदेव ने कहा "अरे जालिम। तो यह सब मेरा एक्टिङ्ग था ? यार, फिर तो किसी फिल्म में जाकर अभिनेता बन। क्लर्की की कलम घिसने में क्या धरा है ? मगर यार, गजब का एक्टिङ्ग था।"

"एक्टिङ्ग नहीं था, वह तिकड़म थी।" रामनाथ ने गम्भीरता से कहा।

यारों ने कहा "वह भी तो सुनाओ, तिकड़म क्या थी ?"

"शादी की चर्चा चलती ही रही। पिता जी सिर खा रहे थे। मैं 'ना-ना' कर रहा था। मगर मैंने पिताजी से दोस्त की साली की ओर इशारा करा दिया था। यह बैठे हैं हज़रत रघुनाथ, कहते

क्यों नहीं ? पिता जी से खूब नमक-मिर्च लगा कर तुम्ही ने तो उसकी चर्चा की थी।"

रघुनाथ ने गुर्राकर कहा "मगर मुझे क्या मालूम था कि तुम पक्के पाजी हो। दग़ाबाज, बेईमान..."

"पाजी-ऊजी तुम हो। मैं सिर्फ तिकड़म-बाज हूँ। तुम सुनते हो या मैं चला जाऊं ?"

सब ने कहा "सुनाओ यार, यह तुम्हारी तिकड़म बड़ी बेढब रही।"

धीर-गम्भीर स्वर मे रामनाथ कहने लगा। सिगरेट बुझ गई थी उसे फेंक दिया। "सगाई पक्की होगई। सुन कर मेरी बांछे खिल गई। गाजियाबाद अब मैं तीन चार दिन मे जाता था। घर वाली कहती-सुनती तो मैं दो-चार गालियां दफ्तर वालों को सुना देता था 'इतना काम दे रखा है कि नाक मे दम हैं।' आखिर सगाई चढ़ी, लगन आई, और सब टेहले भुगते गये। बारात मे इने-गिने आदमी थे, भण्डा फोड़ होने के डर से दिल्ली से दोस्तो का बायकाट कर दिया था। दस-पांच बडे-बूढ़े ले लिये थे। हमारे साले साहब भी बुलाये गये थे, उन्होंने लिखा था, 'छुट्टी मिल सकी तो आने की कोशिश करूंगा।' गरज ठीक समय पर बारात चली। जरा देर की फुरसत निकाल कर गाजियाबाद हो आया। घरवाली से कहा "एक बारात मे जाना पड़ रहा है। दो-तीन दिन लगेंगे, जरा होशियार रहना।" और फिर मैं उबटना करा, जामा पहिन, झट नौशा बन, नई सुसराल को बारात ले चल दिया!"

(२)

मि० रामनाथ दिल्ली की एक बैंक मे क्लर्क हैं। वे मेरे बहनोई होते हैं। मेरी छोटी बहिन उन्हे व्याही है। रङ्गीली तबियत के आदमी हैं। दो महीने पहिले खबर मिली थी कि बहिन का

इन्तकाल हो गया, बड़ा अफसोस हुआ। मैं तब न आ सका था। पिता जी और बड़े भाई आये थे।

अब जो शादी का निमन्त्रण पहुँचा तो फिर मुझे आना ही पड़ा। टूटे रिश्ते का बहुत ख्याल रखना पड़ता है। पिता जी ने भी लिख दिया कि जरूर जाना। मैं वक्त के वक्त ही पहुँचा। पता लगा, बारात इसी गाड़ी से जा चुकी है। लाचार मोटर से जाने का इरादा किया और लारी में बैठ कर चल दिया। गाजिया-बाद में लारी कुछ देर को रुकी। गरमी तेज थी, सोचा—एक गिलास शरबत पीकर पान खा लूँ। सामने ही दूकान थी। शरबत पी रहा था कि एक लड़के ने आकर कहा "आपको बीबी जी बुला रही हैं।"

मैं बड़ा अकचकाया, पूछा 'कौन बीबी जी ?'

उसने सामने के चिक पड़े एक दुमंजिले बरांडे की ओर उंगली उठाई। कोई स्त्री चिक उठा कर हाथ से इशारा करके बुला रही थी। दूर होने के कारण पहिचान न पाया। पास जाकर देखा तो बहिन है। पहिले आँखों को धोखा हुआ। मैं पैर बढ़ाकर एक एक ही साँस में ऊपर चढ़ गया। बहिन ही थी। वह हँस रही थी, और मेरी आँखों से 'धड़ाधड़' आँसू बह रहे थे।

बहिन की हँसी ओठों में रह गई। उसे घर में किसी अनिष्ट की आशंका हुई। उसने घबरा कर कहा "भैया, हुआ क्या है, कहो तो ? घर में सब अच्छे तो हैं ?"

मैंने सिर हिला कर कहा, "सब अच्छे हैं। पर बीवी तू तो मर गई थी।"

"मैं मर गई थी ? यह खूब कही। मैं तो यह खड़ी हूँ। तुम से किसने कहा ?"

मैंने आँखे पोंछी, फिर मलीं और आँखे फाड़-फाड़ कर बहिन को देखने लगा।

बहिन ने कहा "भैया, क्या तुम्हारा सिर फिर गया है ?"

"तो तुम मरी नही हो ?" मैं धम्म से कुर्सी पर बैठ गया।

बहिन जल्दी से एक गिलास शरबत बना लाई और जबरदस्ती मुझे पिला दिया। फिर हँसकर कहा "अब देखो, जिन्दी हूँ या नहीं।"

मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और कहा—"बेशक तुम ज़िन्दी हो—मगर··"

"मगर क्या ?"

"जीजा जी कहाँ हैं ?"

"वे एक बरात में गये हैं।"

"यहाँ कब आये थे ?"

"अभी सुबह ही तो गये हैं।"

"वे यहाँ रोज़ आते हैं ?"

"आज-कल दफ्तर में काम बहुत है, इसीसे अक्सर रातको वहीं रह जाते हैं। आज-कल नौकरी का मामला ऐसा ही है भैया।"

अब मैं मामला कुछ-कुछ समझा, मैंने कहा "जीजा जी ने तो खेल अच्छा खेला। खैर देखा जायगा, तुझे अभी मेरे साथ चलना होगा। अभी इसी दम।"

"कहाँ ?"

"घर।"

"क्यों ? क्या बात है ?"

"कुछ बात ही है, तू तैयार हो, नीचे मोटर खड़ी है।"

"लेकिन वे तो घर पर हैं नहीं।"

"तू चल तो सही।"

बस, मै उसे ले सीधा गॉव पहुंचा। बहिन को देखते ही पिता जी ने छाती से लगा लिया। मैंने कहा "पिता जी, यह सारी कारिस्तानी नई शादी करने की है। जल्दी चलो, शादी रुकवानी होगी।" बस हम लोग गॉव के दो तीन आदमियों को ले बहिन को साथ कर, सीधे औरंगाबाद जा धमके।

(३)

"फिर क्या हुआ ?"

"जो होनी थी, वही हुआ।"

"यानी ?"

"बारात चढ़ चुकी थी। बरोठी हो रही थी, पकवान बन रहे थे। बैंड बज रहे थे। बन्दा मुसकरा रहा था। दिल धड़क रहा था कि सब गुड़ गोबर हो गया। सालिगराम घर वाली और सुसर साहब को ले धूमधाम से जा धमके। रग में भंग पड़ गया। हमारे नये सुसर साहब जरा भलेमानुस थे। वे तो सोचते ही रहे, पर हमारे नये तीनों साले और सालिगराम चीते की तरह झपट पडे। मोहर-वोहर तोड़ डाला। घोड़ी से उतार, जामा फाड़, लात घूसों से वह पूजा की कि यह देखो।" रामनाथ ने कुरता उघाड़ अपना बदन दिखा दिया। जगह-जगह नीले दाग पड़े थे। एक घूसा आँख पर भी पड़ा था, मगर आँख फूटी नहीं, बच गई थी।

यार लोग अब ज़ब्त न कर सके। बेतहाशा हँस पडे। परन्तु रामनाथ निर्विकार रूप से सिगरेट जलाकर चुपचाप पीने लगे।

बलबीर ने कहा—"यह आँख पर भी शायद घूंसा लगा है, क्यों ?"

"हाँ, छोटे साले के दस्तख़त हैं। पता नहीं, हाथ था। कि हथौड़ा, देहाती है साला। अजी बानक ही बिगड़ गया। और दो घण्टे की बात थी कि जय गगा। फिर यही साले पैर पूजते।"

दोस्त ने कहा "खैर हुई आँख बचगई। पर यार यह बुरा हुआ। मगर यह सब तुम्हारा ही गधापन है। तुम कहते हो कि हम गधे हैं, पर हम कहते हैं, तुम गधे हो!"

"मै गधा क्यों हूँ?"

"इसलिए कि यारों को नहीं ले गये। यार लोग गये होते तो तुम्हारी ऐसी पूजा होना क्या मज़ाक थी? ले लेकर हाकी-स्टिक जो टूट पड़ते तो कयामत वर्पा कर देते और लाखों में व्याह रचा कर आते।"

एक ने कहा--"मगर यार, तुम घरवाली और पुराने साले-सुसरों को देखकर झेप क्यों गये? कह देते--तुम भी मुकर्रिर रहो, ये भी रहें। विशाल उदार हिन्दू-धर्म मे सब के लिये जगह है, अंग्रेज़ों ने भी क़ानून में दरवाज़े खिड़कियाँ छोड़ रखीं हैं।"

"मैंने बहुत कहा यार, मगर साले लोगों ने अंधेर मचा दिया। समझदार तो थे नहीं, बस लगे चरनदास से पूजा करने! एक तो देहाती, दूसरे जवान हट्टे-कट्टे, तीसरे उनका घर। लाचारी हो गई।"

दोस्तों ने मूछे मरोड़ीं और आस्तीने चढ़ाई--"वाह यार, चलो एक बार फिर। लाखों मे शादी कराये। नही तो डोला उठा लावे। भला जिसका तेलबान चढ़ गया उसकी शादी कही और हो सकती है?"

रामनाथ का चेहरा सफेद हो गया। सिगरेट फेंक कर उसने कहा--"वह मौका अब नहीं रहा। दोनों सुसरों ने मिल मिला-कर झगड़ा खतम कर लिया। सुसर नम्बर २ कहने लगे--'मेरी इज्जत अब कैसे बचे? इसी मंढे पर लड़की की शादी अब कैसे हो?' सुसर नम्बर १ बोले-- 'आपकी इज्जत हमारी इज्जत है। मेरा लड़का हाज़िर है।' झट देखते-देखते पाजी साले को जामा

पहिना दिया गया। घोड़ी पर चढ़ाया गया, बाजे बजने लगे। सब नेग टेहले भुगतने लगे—मुझे जैसे सब भूल ही गये।"

"फिर तुमने क्या किया? क्या भाग आए?"

"भाग कैसे सकता था? सुसर नम्बर १ ने एक न सुनी; कहने लगे-तुम हमारे मान हो, जा कैसे सकते हो?"

"भई वाह, तो तुम सालिगराम के व्याह में दूल्हे से बराती बन गये। भई रहा खूब।"

रामनाथ बिगड़ गये। कहने लगे—"तुम्हें भी यही करना पड़ता।"

एक बार फिर दोस्तों में कह-कहा मचा। और मि० रामनाथ ठण्डी साँस भरते, आह-ऊँह करते उठ कर रफू-चक्कर हुये।

डाक्टर साहब की घड़ी

—:❀:—
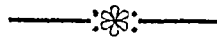
डाक्टर वेदी एम० डी० रियासत के पुराने और प्रख्यात डाक्टर हैं। अपने गत पचास वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बडे-बडे मार्के के इलाज किये हैं। सिर्फ अपनी ही रियासत में नही, रियासत सें बाहर भी अनेक राजपरिवारों में उनकी वैसी ही प्रतिष्ठा और धूमधाम है। उन्होंने बहुत धन कमाया, एक से एक बढ़ कर अनूठी चीजें रईसों से इनामों और भेंटों में ली। उनका ड्राइंगरूम उन चीजों से ठसाठस भरा हुआ है। वे फुरसत के वक्त अक्सर इसी ड्राइंगरूम में बैठ कर अपने दोस्तों को उन भेंटों में पाई हुई चीजों के सम्बन्ध में एक से एक बढ़कर अद्भुत बातें सुनाया करते हैं। कोई-कोई बात तो बड़ी ही सनसनी भरी, आश्चर्यजनक और अत्यन्त प्रभावशाली होती है। अब वे प्रैक्टिस नही करते, यों कोई पुराना प्रेमी घसीट ले जाय तो बात जुदी है। आने जाने वालों का तो उनके यहाँ ताँता ही लगा रहता है, क्योंकि वे मिलनसार, खुशमिज़ाज, उदार और 'नेकी कर कुँये में डाल' वाली कहावत को चरितार्थ करने वाले पुरुष हैं। उनका

लम्बा-चौड़ा डील-डौल, साढ़े तेरह इञ्च की बड़ी मूंछें मोटी और भरी हुई भौंहें, तेज़ नुकीली नाक और मर्मभेदिनी दृष्टि असाधारण हैं। छोटे से बड़े तक पर उनका रुआब है, पर वे छोटे-बड़े सब पर प्रेम-भाव रखते हैं। वे वास्तव मे एक सहृदय और दयावान् पुरुष है, भाग्यवान् भी कहना चाहिये। उनका जीवन सदा मजे मे कटा और अब भी मजे मे ही कट रहा है। वे सब प्रकार के शोक, सन्ताप, चिन्ता और वेदना से मुक्त आनन्दी पुरुष की भाँति रहते है। बूढे भी उनके दोस्त है और जवान भी; बालक भी दोस्त है। अपने पास आते ही वे सब को निर्भय कर देते है, ऐसा ही उनका सरल स्वभाव है।

हाँ, तो मै यह कह रहा था कि उन्होंने बडे-बडे मार्के के इलाज किये है और बडे-बड़े इनाम इकराम और भेंटे प्राप्त की हैं और इनाम और भेंटो की ये सब अनोखी चीजे उनके ड्राइंगरूम मे सजी हुई हैं। बडी-बड़ी शेरो और चीतलों की खाले, मगर के ढाँचे, असाधारण लम्बे पशुओ के सींग, बहूमूल्य कालीन, अलभ्य कारीगरी की चीजे, दुर्लभ चित्र और भारी-भारी मूल्य की रत्न-जटित अँगूठियाँ, पिनें और कलमं। परन्तु इन सब में अधिक आश्चर्यजनक और बहुमूल्य वस्तु एक घड़ी है। यह घड़ी उन्हें एक इलाज के सिलसिले मे नैपाल जाने पर वहाँ के दरबार से मिली थी। इसका आकार एक बडे नींबू के समान है और यह नींबू के ही समान गोल है। उसमे कही भी घण्टे या मिनट की सुई नही, न अक ही अंकित है। सारी घड़ी कीमती प्लाटिनम की महीन कारीगरी से कटी बूटियों से परिपूर्ण है। और उसमे उज्ज्वल असल ब्रेजील के हीरे जड़े है। सिर्फ दो हीरे, जो सब से बड़े हैं और जिनमे एक बहुत हलकी नीली आभा झलकती है, ऐसे मनोमोहक और कीमती हैं कि उन्हीं से एक छोटी-मोटी रियासत खरीद ली जा सकती है। उनमे जो बड़ा और तेजस्वी

हीरा है उस पर उँगली की पोर का एक हलके से स्पर्श का दबाव पड़ते ही घड़ी अत्यन्त मोहक सुरीली तान में घंटा, मिनट, सैकिंड सब बजा देती है उस तान की गूँज समाप्त होते-होते ऐसा मालूम देता है मानो अभी-अभी यहाँ कोई स्वर्गीय वातावरण छाया रहा हो। दूसरे हीरे को तनिक दबा देने से दिन, तिथि, तारीख-पक्ष, मास, संवत् सब ध्वनित हो जाते हैं। यही नही, घड़ी में हज़ार वर्ष का कैलेण्डर भी निहित है; हज़ार वर्ष पहिले और आगे के चाहे भी जिस सन् का दिन, मास और तारीख आप मालूम कर सकते हैं। ऐसी ही वह आश्चर्य-जनक घड़ी है, जिसे डाक्टर साहब अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। कहते हैं—एक बार हुजूर आलीजाह महाराज ने पचास हज़ार रुपये इस घड़ी का डाक्टर साहब को देना चाहा था, तिस पर डाक्टर साहब ने घड़ी महाराज के चरणों मे डाल कर कहा था—'अन्नदाता, मेरा तन, मन, धन, सब आपका है, फिर घड़ी की क्या औकात है; पर इसे मैं बेच तो सकता ही नहीं।' और महाराज हँसते हुये चले गये थे। यह घड़ी स्वीडन के एक नामी कलाकार से नैपाल के लोक-विख्यात महाराज चन्द्र शमशेर जङ्ग-बहादुर ने, जब वे विलायत गये थे, मुँह माँगा दाम देकर खरीदी थी और अपने इकलौते पुत्र के प्राण बचाने पर सन्तुष्ट होकर उन्होंने वह डाक्टर को दे डाली थी। वह घड़ी वास्तव में नैपाल के उत्तराधिकारी के प्राणों के मूल्य की थी। कमरे के बीचो-बीच बिल्लौर की एक गोल मेज़ थी। यह मेज ठोस बिल्लौर की थी, उसका सारा ढाँचा ही बिल्लौर का था। सर्पाकार एक पाये के ऊपर मेज रक्खी थी। यह मेज़ खास इसी मकसद के लिये डाक्टर साहब ने खास लण्डन से खरीदी थी। उस मेज पर इटली की बनी एक अति भव्य मार्बल की स्त्री-मूर्ति थी। यह मूर्ति रोमन कला की प्रतीक रूप थी, जिसे डाक्टर साहब ने बड़ी खोज-जाँच से खरीद कर

उसके हाथ में एक चतुर कारीगर से एक स्प्रिंग लगवाया था, जिसकी ऐसी व्यवस्था थी कि घड़ी हमेशा उस पुतली के उसी हाथ में रक्खी रहती थी। ठीक समय पर घड़ी के हीरे पर स्प्रिङ्ग का दबाव पड़ता तो घड़ी में ताल स्वर युक्त मधुर सङ्गीत की ध्वनि निकलती। उस समय जैसे वह प्रस्तर मूर्ति ही मुखरित हो उठती थी। मित्रगण घड़ी का यह चमत्कार देख, जब आश्चर्य-सागर में गोते खाने लगते तो डाक्टर गर्वोन्नत नेत्रों से कभी घड़ी को और कभी मित्रों को घूर-घूर कर मन्द-मन्द मुसकराया करते थे।

(२)

सावन का महीना था। रिमझिम वर्षा हो रही थी। ठण्डी हवा बह रही थी। काले-काले मेघ आकाश में छा रहे थे, बीच-बीच में गभीर गर्जन हो रहा था। चारो ओर हरियाली अपनी छटा दिखा रही थी। दिन का तीसरा प्रहर था। डाक्टर साहब अपने तीन घनिष्ठ मित्रों के साथ उसी ड्राइंगरूम में बैठे आनन्द से धीरे-धीरे वार्तालाप कर रहे थे। उन मित्रों में एक मेजर भार्गव थे, दूसरे दीवान पारख थे और तीसरे एक नवयुवक मिस्टर चक्रवर्ती आई० सी० एस० थे। एका-एक घड़ी में से मधुर गूँज उठी। मित्र-मडली चकित होकर घड़ी की ओर देखने लगी डाक्टर साहब आँखे बन्द किये सोफे पर ओढ़क कर उस मधुर स्वर-लहरी को जैसे कानों से पीने लगे। जब घड़ी का संगीत बन्द हुआ तो मिस्टर चक्रवती ने कपाल पर आँखे चढ़ाकर कहा—"अद्‌भुत घडी है यह आप की डाक्टर साहब!" यह तो मानो घड़ी की कुछ तारीफ ही न थी। डाक्टर ने सिर्फ मुस्करा दिया। मेजर साहब ने कहा—"अद्‌भुत? अजी, इस घडी का तो एक इतिहास है।" फिर उन्होंने डाक्टर की ओर मुह कर के कहा—"वह सूबेदार साहब वाली घटना तो इसी घड़ी से सम्बन्ध रखती है न?"

डाक्टर साहब जैसे चौंक पड़े। एक वेदना का भाव उनके ओठों पर आया और उन्होंने धीमे स्वर से कहा "जी हाँ, वह दुखदाई घटना इसी घड़ी से सम्बन्ध रखती है।"

मित्र गण चौकन्ने हो गये। मिस्टर चक्रवर्ती बोल उठे "क्या मैं इस घटना का वर्णन सुन सकता हूँ?"

डाक्टर ने उदास होकर कहा "जाने दीजिये मिस्टर चक्रवर्ती, इस दारुण घटना को भूल जाना ही अच्छा है, खास कर जब उसका सम्बन्ध मेरी इस परम प्यारी घड़ी से है।"

परन्तु मिस्टर चक्रवर्ती नहीं माने, उन्होंने कहा "यह तो अत्यन्त कौतूहल की बात मालूम होती है। यदि कष्ट न हो तो कृपा कर अवश्य सुनाइये। यह जरूर कोई असाधारण घटना रही होगी, तभी उससे आप ऐसे विचलित होगये हैं।"

"असाधारण तो है ही।" कह कर कुछ देर डाक्टर चुप रहे फिर उन्होंने एक-एक करके प्रत्येक मित्र के मुख पर दृष्टि डाली। सब कोई सन्नाटा बाँधे डाक्टर के मुँह की ओर देख रहे थे। सब के मुख पर से उनकी दृष्टि हट कर घड़ी पर अटक गई। वे बड़ी देर तक एक टक घड़ी को देखते रहे, फिर एक ठण्डी साँस लेकर बोले—"आपका ऐसा ही आग्रह हैं, तो सुनिये।"

(३)

धीरे धीरे डाक्टर ने कहना शुरू किया—"चौदह साल पुरानी बात है। सूबेदार कर्नल ठाकुर शार्दूलसिंह मेरे बड़े मुरब्बी और पुराने दोस्त थे। वे महाराज के रिश्तेदारों में होते थे। उनका रियासत में बड़ा नाम और दरबार में प्रतिष्ठा थी। उनकी अपनी एक अच्छी जागीर भी थी। वह देखिये, सामने जो लाल हवेली चमक रही है, वह उन्हीं की है। बड़े ठाट और रुआब के आदमी थे, अपने ठाकुरपने का उन्हें बड़ा घमण्ड

था। उनके बाप-दादों ने मराठों की लड़ाई में कैसी-कैसी वीरता दिखाई थी— वे सब बड़ी दिल-चस्पी से सुनाया करते थे। वे बहुत कम लोगों से मिलते थे, सिर्फ मुझी पर उनकी भारी कृपा दृष्टि थी। जब भी वे अवकाश पाते आ बैठते थे। बहुधा शिकार को साथ ले जाते थे। और हफ्ते में एक बार तो बिना उनके यहां भोजन किये जान छुटती ही न थी। उनके परिवार में मैं ही इलाज किया करता था। मैं तो मित्रता का नाता निबाहना चाहता था और उनसे कुछ नहीं लेना चाहता था, पर वे बिना दिये कभी न रहते थे। वे हमेशा मुझे अपनी औकात और मेरे मिहनताने से अधिक देते रहे। मेरे ऊपर उन्होंने और भी बहुत अहसान किये थे, यहां तक कि रियासत में मेरी नौकरी उन्होंने लगवाई थी और महाराज आलीजाह की कृपा दृष्टि भी उन्हीं की बदौलत मुझ पर थी।

"एक दिन सदा की भाँति वे इसी बैठकखाने में मेरे पास बैठे थे। हम लोग बड़े प्रेम से धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। वास्तव में बात यह थी कि मैं उनका बहुत अदब करता था, उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था, फिर मुझ पर तो उनके बहुत से अहसान थे। एकाएक मुझे जरूरी 'कॉल' आ गई। पहले तो सूबेदार साहब को छोड़कर जाना मुझे नहीं रुचा परन्तु जब उन्होंने कहा कि कोई हर्ज नहीं, आप मरीज को देख आइये, मैं यहां बैठा हूँ तब मैंने कहा—'इसी शर्त पर जा सकता हूँ कि आप जायँ नहीं।' तो उन्होंने हँस कर मंजूर किया— और पैर फैलाकर मजे में बैठ गये।

"मैंने झटपट कपड़े पहिने, स्टेथस्कोप हाथ में लिया और रोगी देखने चला गया। रोगी का घर दूर न था। झटपट ही उससे निपट कर चला आया। देखा तो सूबेदार साहब सोफे पर

पर बैठे मजे से ऊँघ रहे हैं। मैंने हँस कर कहा— 'वाह, आपने तो अच्छी खासी झपकी लेली।' सूबेदार भी हँसने लगे। हम लोग फिर बैठ कर गपशप उड़ाने लगे।

उसी दिन पाँच बजे मुझे महलों में जाना था। एकाएक मुझे यह बात याद हो आई और, मैंने अभ्यास के अनुसार मेज़ पर घड़ी को टटोला। तब यह बिल्लौर मेज़ मैंने नहीं खरीदी थी, वह जो मेरी आफिस-टेबिल है, उसी पर एक जगह यह घड़ी मेरी आँखों के सामने रक्खी रहती थी। परन्तु उस समय जो देखता हूँ तो घड़ी का कहीं पता न था। कलेजा धक से होगया। अपनी बेवकूफी पर पछताने लगा कि इतनी कीमती घड़ी ऐसी अरक्षित जगह रक्खी ही क्यों? मैं तनिक व्यस्त होकर घड़ी को ढूँढने लगा, मेरी घड़ी कितनी बहुमूल्य है, यह तो आप जानते ही हैं। सूबेदार साहब भी घबड़ा गये, वे भी व्यस्त होकर मेरे साथ घड़ी ढूंढ़ने में लग गये। बीच में भांति भांति के प्रश्न करते जाते थे। परन्तु यह निश्चय था कि थोड़ी ही देर पहिले जब मैं बाहर गया था, घड़ी वहाँ रक्खी थी। मैंने उसे भली भांति अपनी आँखों से देखा था। पर यह बात मैं साफ साफ सूबेदार साहब से नहीं कह सकता था, क्यों कि वे तो तब से अब तक यही बैठे थे। कहीं वे यह न समझने लगे हमीं पर शक किया जा रहा है। खैर, घड़ी वहाँ न थी, वह नहीं मिलनी थी और नहीं मिली। मै निराश होकर धम्म से सोफे पर बैठ गया पर ऐसी बहुमूल्य घड़ी गुमा देना और सब्र कर बैठना आसान न था। भांति भांति के कुलावे बांधने लगा। सूबेदार साहब भी पास आ बैठे और आश्चर्य तथा चिन्ता प्रकट करने लगे। उन्होंने पुलिस में भी खबर करने की सलाह दी, नौकर चाकरों की भी छान-बीन की।

परन्तु मेरा सिर्फ एक ही नौकर था। वह बहुत पुराना और विश्वासी नौकर था। गत पन्द्रह वर्षों से वह मेरे पास था, तब से एक बार भी शिकायत का मौका नहीं दिया। फिर इतनी असाधारण चोरी वह करने का साहस कैसे कर सकता था? पर सूबेदार साहब उससे बराबर जिरह कर रहे थे और वह बराबर मेज पर उँगली टेक-टेक कर कह रहा था 'यहाँ उसने झाड़-पोंछ कर घड़ी अपने हाथ से सुबह रक्खी है।' मैं आँखें छत पर लगाये सोच रहा था कि घडी आखिर गई तो कहाँ गई?

एकाएक सूबेदार साहब का हाथ उनकी पगड़ी पर जा पड़ा उसकी एक लट ढीली सी हो गई थी, वे उसी को शायद ठीक करने लगे थे। परन्तु, कैसे आश्चर्य की बात है, पगडी के छूते ही वही मधुर तान पगड़ी मे से निकलने लगी। पहिले तो मैं कुछ समझ ही न पाया। नौकर भी हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखने लगा। सूबेदार साहब के चेहरे पर घबराहट के चिन्ह साफ दीख पडने लगे। क्षण भर बाद ही नौकर ने चीते की भाँति छलाँग मारकर सूबेदार साहब के सिर पर से पगड़ी उतार ली और उससे घड़ी निकाल कर हथेली पर रखकर कहा— 'यह रही हजूर आपकी घड़ी। अब आप ही इन्साफ कीजिए कि चोर कौन है?' उसके चेहरे क नसें उत्साह से उमड़ आई थीं और आँखें आग बरसा रही थी। वह जैसे सूबेदार साहब को निगल जाने के लिये मेरी आज्ञा माँग रहा था। सब माजरा मैं भी समझ गया। सूबेदार साहब का चेहरा सफेद मिट्टी की माफिक हो गया था और वे मुर्दे की भाँति आँखें फाड़-फाड़ कर मेरी तरफ देख रहे थे। कुछ ही क्षणों मे मैं स्थिर हो गया। मैंने लपक कर खूँटी से चाबुक उतारा और एकाएक पाँच-सात नौकर की पीठ पर जमा दिये। घडी उसके हाथ से मैंने छीन ली।

इसके बाद जितना क्रुद्ध स्वर बनाया जा सकता था उतना क्रुद्ध होकर मैंने कहा—सुअर, इतने दिन मेरे पास रह कर तूने अभी यह नहीं सीखा कि बड़े आदमी का अदब कैसे किया जा जा सकता है, क्या दुनिया मे एक मेरे ही पास घड़ी है, सूबेदार साहब के पास वैसी पच्चीस घड़ी हो सकती हैं।

नौकर गाली और मार खाकर चुपचाप मेरा मुँह ताकता रहा। मेरा यह व्यवहार उसके लिये सर्वथा अतर्कित था। वह एक शब्द भी नही बोला।

इसके बाद मै सूबेदार साहब के पास गया। उनका चेहरा सफेद, मुर्दे के समान हो रहा था, वे आँखे फाड़ फाड़ कर मेरी ओर ताक रहे थे, मैंने नम्रता से उनसे कहा, सूबेदार साहब, मेरे नौकर ने जो आपके साथ बेअदबी की है वह उसका कसूर नही है, मेरा है परन्तु पुराने ताल्लुकात और उन कृपाओं का ख्याल करके जो आपने हमेशा मेरे ऊपर की है, मै आपसे क्षमा की आशा करता हूँ।" यह कहकर मैंने घड़ी उनके हाथ पर रख दी।

सूबेदार साहब ने चुपचाप घड़ी ले ली। और वे यन्त्र चालित से उठकर चुपचाप ही अपने घर को चल दिये। मै द्वार तक उनके पीछे दौड़ा परन्तु उन्होंने फिर मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

मेरा मन कैसा कुछ होगया था कह नही सकता। परन्तु मुझे महल अवश्य जाना था। और ५ बजने मे अब देर नही थी मैंने झटपट कपड़े पहिने और घर से निकला। अभी मैंने गाड़ी मे पैर ही किया था कि सूबेदार साहब का आदमी हांपता हुआ बद-हवास सा आया उसने कहा जल्दी चलिए डॉक्टर साहब। सूबेदार साहब ने जहर खा लिया है और उनकी हालत बहुत खराब है।"

मै घबराकर सीधा उनके घर पहुँचा। एक कोहराम मचा था। भीड़ को पार करके मै सूबेदार साहब के पलग के पास गया। अभी वे होश मे थे । मुझे देखकर टूटते स्वर मे उन्होंने कहा "घडी मैने आपकी चुराई थी डाक्टर साहब , परन्तु मेरी इज्जत बचाकर जीवन भर मे जो कुछ मैने आपकी भलाई की थी उसका पूरा बदला आपने चुका दिया। लीजिए मेरे हाथ से अपनी घड़ी ले जाइये। अब मै जिन्दा नही रह सकता। परन्तु आप इस चोर सूबेदार को भूलियेगा नही। और उसे माफ कर देने की कोशिश कीजिएगा।"

सूबेदार साहब की आँखे उल्टी-सीधी होने लगी। अब वास्तव में कुछ भी नहीं हो सकता था। मैने चुपके से घडी जेब में डालली, और सब की नज़र बचाकर आँखे पोंछ ली। कुछ मिनटों मे ही सूबेदार ने दम तोड़ा और मै जैसे तैसे उनके घरवालों को दम दिलासा देकर डाक्टरी गम्भीरता बनाये अपने घर आ गया।

डाक्टर ने एक गहरी सांस ली और एक बार मित्रों की ओर, और फिर उस घड़ी की ओर देखा। सभी मित्रों की आँखे गीली थीं। और देर तक किसी के मुँह से आवाज नहीं निकली।

मरम्मत

"दशहरे की छुट्टियों में भैया घर आ रहे हैं, उनके साथ उनके एक मित्र भी हैं, जब से यह सूचना मिली है घर भर में आफत मची है। कल दिन भर नौकर-चाकरों की कौन कहे, घर के किसी भी आदमी को चैन नहीं पड़ा। दीना की माँ को चार दिन से बुखार आ रहा था, पर उस बेचारी पर भी आफ़त का पहाड़ टूट पड़ा। दिन भर ग़रीब चूल्हे पर बैठी रही। कितने पकवान बनाये गये, कितनी जिन्स तैयार की गई है बापरे। भैया न हुए भीमसेन हुए। दुलारी उनके लिए और उनके उन निखट्टू दोस्त के लिए कमरा झाड़ रही है, रामू और रघू वहाँ रूमाल, तौलिए, सुराही, चाय के सेट, चादर, बिछौने और न जाने क्या-क्या सरंजाम जुटाते रहे। रात भर खट-खट रही। अभी दिन भी नहीं निकला और बाबू जी आँगन में खड़े गर्ज रहे हैं। सईस को गालियां सुनाई जा रही हैं, 'अभी तक गाड़ी स्टेशन पर नहीं गई। फिटिन भी जानी चाहिए और विक्टोरिया भी।' कहो जी, अकेला सईस दो दो गाड़ियां कैसे ले जायगा, फिर भैया ऐसे कहां के

लाट साहेब हैं, एक गाड़ी क्या काफी नहीं ? उनके वे दोस्त भी कोई आवारागर्द मालूम देते हैं, छुट्टियों में अपने घर न जा कर पराए घर आ रहे हैं, ईश्वर जाने उनका घर है भी या नहीं।"

रजनी आप ही आप बड़बड़ा रही थी। सूरज निकल आया था, धूप फैल गई थी, पर वह अभी बिछौने ही पर पड़ी थी। उसके कमरे में कोई नौकर-नौकरानी नहीं आई थी, इसी से वह बहुत नाराज हो रही थी। एक हल्की फीरोजी ओढ़नी उसके सुनहरे शरीर पर अस्त-व्यस्त पड़ी थी, चिकने और घूंघर वाले बाल चॉदी के समान मस्तक पर बिखर रहे थे। बड़ी बड़ी आंखें भरपूर नींद का सुख लूट कर थोड़ी लाल हो रही थी। गुस्से से उसके होठ सम्पुटित थे, भौहो मे बल थे, वह पलग पर औंधी पड़ी थी। एक मासिक पत्रिका उसके हाथों मे थी। वह तकिये पर छाती रक्खे अनमने भाव से उसके पन्ने उलट रही थी।

रजनी की मॉ का नाम सुनन्दा था। खूब मोटी ताजी, गुदगुदी ठिगनी स्त्री थी। जब वे फुर्ती से काम करतीं तो उनका गेंद की तरह लुढ़कना एक अजब बहार दिखाता था। वह एक अच्छी सुगृहिणी थी, दिन भर काम मे लगी रहती थी। उनके हाथ बेसन में भरे थे और पल्ला धरती मे लटक रहा था। उन्होंने जल्दी-जल्दी आकर कहा "वाह री रानी बेटी, तेरे ढङ्ग तो खूब हैं। भैया घर मे आरहे हैं, दस काम अटके पडे है और रानी जी पलङ्ग पर पड़ी किताब पढ़ रही हैं। उठो जरा, रमिया हरामजादी आज अभी तक नही आई। जरा गुसलखाने मे धोती, गमछा, साबुन सब सामान ठिकाने से रख दो— भैया आकर स्नान करेंगे। उठ तो बेटी। अरी पराये घर तेरी कैसे पटेगी ?"

रजनी ने सुनकर भी मॉ की बात नहीं सुनी, वह उसी भॉति

चुपचाप पड़ी रही। गृहिणी जाती-जाती फिर रुक गई। उसने कहा "रजनी सुनती नहीं, मैं क्या कह रही हूँ। भैया......

रजनी गर्ज उठी "भैया—जब देखो भैया, भैया आ रहे हैं तो मैं क्या करूं ? छत से कूद पड़ूँ ? या पागल होकर बाल नोंच डालूँ ? भैया आरहे हैं या गाँव में शेर घुस आया है। घर भर ने जैसे धतूरा खा लिया हो। भैया आते हैं तो आवें ? इतनी आफ़त क्यों मचा रखी है।"

क्षण भर को गृहिणी अवाक हो रही, उसने सोचा भी न था कि रजनी भैया के प्रति इतना विद्रोह रखती है। भैया तो हर बार ही पत्र में रजनी की बात पूछता है। आने पर वह अधिक देर तक उसी के पास रहता है, बातें करता है, प्यार करता है। उसने क्रुद्ध दृष्टि से पुत्री की ओर देख कर कहा "भैया का आना इतना दुख रहा है रजनी !"

"भैया का आना तो नहीं, तुम लोगों की यह हाय-हाय जरूर दुख रही है।"

"क्यों दुख रही है री ?"

"भैया घर में आ रहे हैं तो इतनी उछल कूद क्यों हो रही है ?"

"भैया घर मे आरहे हैं, तो हो नहीं ? क्या मेरे दस-पाँच हैं ? एक ही मेरी आँखों का तारा है। छः महीने में आरहा है। परदेस में क्या खाता-पीता होगा, कौन जाने। उसे बड़ियाँ बहुत भाती हैं, मेरे हाथ की कढ़ी बिना उसे रसोई सूनी लगती है, आलू की कचौरी का उसे बहुत शौक है, यह सब इसी से तो बना रही हूँ। फिर इस बार आ रहे हैं, उनके कोई दोस्त। किसी रईस के बेटे होंगे। उनकी खातिर न करूं ?"

"करो फिर। मेरा सिर क्यों खाती हो ?"

न सिर खाती हूँ, अरी तेरा सिर तो इन किताबों ने ही खा डाला। मां को ऐसे जवाब देती है। दोपहर होगया, पलंग से नीचे पैर नही देती। भैया के आने से पहिले माथे पर बल पड़ गये हैं।"

रजनी ने वक्र दृष्टि से माँ की ओर देखकर गुस्से में आकर छाती के नीचे का तकिया दीवार मे दे मारा, मासिक पत्रिका फेंक दी। उसने तीखी वाणी से कहा—"मै भी तो आई थी छः महीने मे, तब तो इतनी धूम नही हुई थी।"

"तू बेटी की जात है—बेटी-बेटा क्या बराबर हैं ?"

"बराबर क्यों नही हैं ?"

"अब मै तुझसे मुँहजोरी करूं कि काम ?"

"काम करो। बेटियां पेट से थोड़ी पैदा होती हैं। घूरे पर से उठा कर लाई जाती हैं। उनकी प्रतिष्ठा क्या, इज़्ज़त क्या, जीवन क्या ? मर्द दुनियां मे बड़ी चीज है। उनका सर्वत्र स्वागत है।" रजनी रूठ कर शाल को अच्छी तरह लपेट कर दूसरी ओर मुंह करके पड़ रही, गृहिणी बकझक करती चली गई।

(२)

उनका नाम था राजेन्द्र और उनके मित्र का दिलीप। दोनों मित्र एम० ए० फ़ाइनल मे पढ़ रहे थे। ६ बजते-बजते दोनों मित्रों को लेकर फिटिन द्वार पर आ लगी। घर मे जो दौड़-धूप थी वह और भी बढ़ गई। पिता को प्रणाम कर राजेन्द्र मित्र के साथ घर मे आये। माता ने देखा तो दौड़ कर ऐसी लपकी जैसे गाय बच्चे को देख कर लपकती है। अपने पुत्र को छाती से लगा अश्रु मोचन किया। मुख, सिर, पीठ पर हाथ फेरा। पत्र न भेजने के, अम्मा को भूल जाने के, दो चार उलाहने दिये। राजेन्द्र ने सब के बदले में हँस कर कहा "देखो अम्माँ, इस बार मैंने खूब दूध मलाई

खाई है, मै कितना तगड़ा हो आया हूँ। इस दिलीप को तो मै योंही उठा कर फेक सकता हूँ।

गृहिणी ने इतनी देर बाद पुत्र के, मित्र को देखा। दिलीप ने प्रणाम किया; गृहिणी ने आशीर्वाद दिया। इसके बाद उसने कहा, 'बैठक मे चल कर थोड़ा पानी पी लो, पीछे और बाते होंगी।' राजेन्द्र ने पूछा "वह लोमड़ी कहाँ है—रजनी ?" वह ठहाका मारकर हँस दिया। "वह अपने कमरे मे होगी।" माता ने उदासी से कहा। "आओ दिलीप मै तुम्हें लोमड़ी दिखाऊँ।" कह कर उसने मित्र का हाथ खीच लिया, दोनों जीने पर चढ़ गये। गृहिणी रसोई में चली गई।

राजेन्द्र ने रजनी की कोठरी के द्वार पर खडे होकर देखा, मुँह फुलाये कुर्सी पर बैठी है। घर के आनन्द-कोलाहल से उसे जो विरक्ति होरही थी वह अभी भी उसके मुख पर थी। अब एका-एक भाई और उसके मित्र को भीतर आते देख कर वह उठ खड़ी हुई। उसने मुस्कराकर भाई को प्रणाम किया।

राजेन्द्र ने आगे बढ़ कर उसके दोनों कंधे झकझोर डाले, फिर दिलीप से कहा—"दिलीप, यही हमारी लोमडी है। इसके सब गुण तुमको अभी मालूम नही। सोने मे कुम्भकरण, खाने मे भीमसेन, लड़ने मे सूर्पनखा, और पढ़ने में बण्टाढ़ार। पर न जाने कैसे बी० ए० में पहुँच गई। इस साल यह बी० ए० फ़ाइनल में जा रही है। क्लास में सदा प्रथम होकर प्रोमोशन पाती रही है।"

दिलीप ने देखा एक चम्पक वर्णी सुकुमार किशोरी बालिका जिसका अल्हड़पन उसके अस्त-व्यस्त वस्त्रों और बालों से स्पष्ट हो रहा है, राजेन्द्र ने कैसी कदर्य व्याख्या की है। भाई बहिन का दुलार भी बड़ा दुर्गम है। वह शायद गाली-गुफ्ता धौल-धप्पा से ही ठीक ठीक अमल मे लाया जा सकता है।

दिलीप आश्चर्य-चकित होकर रजनी को देख कर मुस्करा रहे थे। उन्हें कुछ भी बोलने की सुविधा न देकर राजेन्द्र ने रजनी की ओर देख कर कहा— "और यह महाशय, मेरे सहपाठी, कहना चाहिये मेरे शिष्य हैं, रसगुल्ला खिलाने और रसगुल्ले से भी मीठी गप्पे उड़ाने में एक है। जैसी तू पक्की लोमड़ी है वैसे ही यह पक्के गधे हैं। मगर यूनीवर्सिटी की डिगरी तो लिये ही जाते है खाने-पीने मे पूरे राक्षस हैं। जरा बन्दोबस्त ठीक ठीक रखना।"

राजेन्द्र ही-ही कर हँसने लगा। फिर उसने दिलीप के कंधे पर हाथ रख कर कहा—"दिलीप, रज्जी हम लोगो की बहिन है, ज्यादा शिष्टाचार की जरूरत नही, बैठो और बेतकल्लुफ 'तुम' कह कर बातचीत करो।"

जब तक राजेन्द्र कहता रहा रजनी चुप चाप सिर नीचा किये सुनती रही, एकाध बार वह मुस्कराई भी, पर एक अपरचित युवक के सामने इतनी घनिष्ठता पसंद नही आई।

दिलीप ने अब कहना शुरू किया—"रज्जी, तुम्हारा परिचय पाकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। राजेन्द्र ने बार-बार तुम्हारी मुक्त कण्ठ से प्रशंशा की थी। अब मुझे यहाँ खींच भी लाये। बडे हर्ष की बात है कि तुम अपने कालेज मे प्रथम रहती रही हो तुम नारी-रत्न हो, मै तुम्हें देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूँ।"

रजनी ने उनका उत्तर न देकर केवल मुस्करा भर दिया, फिर उसने भैया से कहा "जलपान नहीं हुआ न, यही ले आऊँ?" वह जाने लगी तभी दुलारी ने आकर कहा—"भैया, जलपान बैठक मे तैयार है।"

राजेन्द्र ने कहा—"यहीं ले आ। तुम ठहरो रजनी, दुलारी ले आवेगी।"

तीनों के बैठ जाने पर राजेन्द्र ने कहा "रजनी अभी तक तुम अपने कमरे में क्या कर रही थीं ?"

"मै विद्रोह कर रही थी।" रजनी ने तिरछी नजर से भाई को घूर कर और ओठों पर वैसी ही मुस्कान भर कर कहा।

"बाप रे, विद्रोह, जरा सोच समझ कर कोई बात कहना, दिलीप के पिता सी० आई० डी० के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट है।"

"मै तो खुला विद्रोह करती हूँ, गुप्त षडयन्त्र नहीं।"

"किसके विरुद्ध यह खुला विद्रोह है ?"

"तुम्हारे विरुद्ध।"

"मेरे विरुद्ध ? मैंने क्या किया है !"

"तुम पुरुष हो न ?"

"इस मे मेरा क्या अपराध है, मुझे रजनी बनने में कोई उज्र नही, यदि तुम राजू बन जा सको।"

"मै पुरुष नहीं बनना चाहती, पुरुषो के विरुद्ध विद्रोह किया चाहती हूँ।"

"किसलिये ?"

"इसलिये कि पुरुष क्यों सब बातों मे सर्व-श्रेष्ठ बनते हैं, स्त्रियां क्यों उनसे हीन समझी जाती हैं ?"

दिलीप अब तक चुप बैठा था, अब वह जोश मे आकर हथेली पर मुक्का मार कर बोला "ब्रेवो, रज्जी मै तुम्हारे साथ हूँ।"

"मगर मै तुम दोनों का मुकाबिला करने को तैयार हूँ।"

"पुरुष श्रेष्ठ हैं और श्रेष्ठ रहेंगे।" राजेन्द्र ने पैतरा बदल कर नकली क्रोध और गम्भीरता से कहा। फिर उसने जरा हँस कर कहा "मगर यह विद्रोह उठा कैसे रजनी ?"

रज्जी ने नथुने फुला और भौहों मे बल डाल कर कहा--"कल से अम्माँ ने और बाबू जी ने घर भर को सिर पर उठा

रक्खा है। पचास तो पकवान बनाये हैं, रात भर खट-खट, खट-खट रही। नौकर-चाकरों के नाक में दम। भैया आ रहे हैं, भैया आ रहे हैं। मै भी तो आती हूँ, तब तो कोई कुछ नही करता। तुम पुरुष लोगों की सब जगह प्रधानता है, सब जगह इज्जत। मै इसे नहीं सहन करूँगी।" रजनी ने खूब जोश और उवाल में आकर ये बातें कहीं।

सब कैफियत सुनकर राजेन्द्र हँसते हँसते लोट-पोट होगये। उन्होंने कहा, ठहर, मै अभी तेरा विद्रोह दमन करता हूँ। वे दौड़ कर नीचे गये और क्षण भर ही मे एक बड़ा सा बण्डल ला उसे खोल उसमे से साड़ियॉ, कङ्घे, लेवेन्टर, सेन्ट, क्रीम और न जाने क्या-क्या निकाल-निकाल कर रजनी पर फेकने लगे। यह सब देख रजनी खिलखिला कर हँस पड़ी। विद्रोह दमन होगया।

दुलारी जलपान ले आई। तीनो बैठकर खाने लगे। राजेन्द्र ने कहा—"कहो विद्रोह कैसे मजे मे दमन हुआ?"

"वह फिर भडक उठेगा।"

"वह फिर दमन कर दिया जायगा।"

"पर इस दमन मे कितना गोला बारूद खर्च होता है?"

"दमन करके शान भी कितनी बनती है।"

एक बार फिर तीनों प्राणी ठहाका मार हँस दिये। जलपान समाप्त होगया।

(३)

दिलीप बाबू और रजनी मे बड़ी जल्दी पट गई। राजेन्द्र बाबू तो दिन भर गॉव का, ज़िमीदारी का, खेतों का मटरगश्त लगाते और दिलीप महाशय लाइब्रेरी मे आराम-कुर्सी पर रजनी की प्रतीक्षा मे पडे रहते। अवकाश पाते ही रजनी वहॉ पहुंच जाती। उसके पहुँचते ही बडे जोर-शोर से किसी सामाजिक विषय

पर विषाद छिड़ जाता, पर सब से प्रधान विषय तो होता था स्त्री-स्वतन्त्रता। इस विषय पर दिलीप महाशय रजनी का विरोध नहीं करते थे, प्रश्रय देते थे और यदि बीच में राजेन्द्र आ पड़ते तो उनसे जब रजनी का प्रबल वाग्युद्ध छिड़ता तो दिलीप सदैव रजनी ही को बढ़ावा देते रहते। तब क्या राजेन्द्र दकियानूसी विचारों के थे? नहीं, वे तो केवल विवाद के लिए विवाद करते थे। भाई-बहिन में प्रगाढ़ प्रेम था। रजनी को राजेन्द्र प्राण से बढ़कर मानते। यह बात दिलीप के मन में घर कर गई। राजेन्द्र एक सच्चे, उदार और पवित्र विचारों के युवक थे, और रजनी एक चरित्रवती-सतेज बालिका थी। शिक्षा से उसका हृदय उत्फुल्ल था, उसके उज्जवल मस्तक पर प्रतिभा का तेज था, वह जैसे भाई के सामने निस्संकोस भाव से आती-जाती, हँसती, रूठती, भागती, दौड़ती, बहस करती और बिगड़ती थी, उसी भाँति दिलीप के सामने भी। वह यह बात भूल गई थी कि दिलीप कोई बाहर का आदमी है।

परन्तु दिलीप के रक्त की उष्णता बढ़ रही थी। उसकी आँखों में गुलाबी रङ्ग आ रहा था। वह अधिक से अधिक रजनी के निकट रहना, उसे देखना और उसकी बातें सुनना चाहता था। उसकी यह अनुराग और आसक्ति रजनी पर तुरन्त ही प्रकट हो गई। वह चौकन्नी हो गई। वह एक योद्धा-प्रकृति की लड़की थी। ज्योंही उसे यह पता चला कि भैया के यह लम्पट मित्र प्रेम की लहर में आ गये हैं, उसने उन्हें ज़रा ठीक तौर पर पाठ पढ़ाने का निश्चय कर लिया। कॉलेज और बोर्डिङ्ग में रहने वाले छात्रों की लोलुप और कामुक प्रकृति का उसे काफ़ी ज्ञान था। वह स्त्री-जाति की रक्षा के प्रश्न पर, उसकी स्वाधीनता के प्रश्न पर, विचार कर चुकी थी। वह इस निर्णय पर पहुँच चुकी थी कि स्त्रियों को

अपने सम्मान की रक्षा के लिए मर्दों का आसरा नहीं तकना चाहिए। वह जब भाई से इस विषय पर जोर-शोर से विवाद करती थी, तब आवेश में उसका मुँह लाल हो जाता था। राजेन्द्र को तो उसे इस प्रकार उत्तेजित करने में आनन्द आता था, किन्तु दिलीप महाशय अकारण ही उसका समर्थन करते-करते कभी-कभी तो अपना व्यक्तित्व ही खो बैठते थे।

रजनी ने उन महाशय को प्रेम का खरा सबक सिखाने का पक्का इरादा कर लिया। ये स्कूल कॉलेज के गुण्डे लड़कियों को मिठाई से ज्यादा कुछ समझते ही नहीं। देखते ही उनकी लार टपक पड़ती है, वे निर्लज्ज की भाँति उनकी मिलनसारी, उदारता और कोमलता से लाभ उठाते हैं। रजनी होठ काटकर यह सोचने लगी कि आखिर ये पुरुष स्त्रियों के अपमान का ऐसा साहस ही किस लिये करते हैं। स्त्रियों के सामने जमनास्टिक की कसरत सी करना तो इन लफङ्गों का केवल नाटक है। रजनी देख चुकी थी कि उसे अपने कालेज-जीवन में इन उद्दण्ड युवकों से कितना कष्ट भोगना पड़ा था—वे पीठ पीछे लड़कियों के विषय में कितनी मनमानी अपमान-जनक बातें किया करते हैं। उनकी मनोवृत्तियाँ कितनी गन्दी होती हैं। उसने पहचान लिया कि भैया के मित्र भी उसी टाइप के हैं। और उनकी अच्छी तरह मरम्मत करके उनके इस टपकते हुए प्रेम को हवा कर देने की उसने प्रतिज्ञा कर ली। उसने अपनी सहायता के लिए घर की युवती दासी दुलारी को मिलाकर सब प्रोग्राम ठीक-ठाक कर लिया।

(४)

उस दिन राजेन्द्र पिता के साथ देहात में जमींदारी की कुछ जरूरी झंझट सुलझाने गये थे। घर में गृहिणी, नौकर-नौकरानी ही थीं, गृहिणी पुत्री को इतना स्वतन्त्र देखकर बड़बडाती तो थी,

पर कुछ रोक-टोक नहीं करती थी। दिलीप के साथ रजनी निस्सङ्कोच बातें करती है, बैठी रहती हैं, ताश खेलती है, चाय पीती है, इन सब बातों को उसका मन सहन कर गया था। वह साधारण पढ़ी-लिखी स्त्री थी, पर पुत्री ने कालेज की शिक्षा पाई है यह वह जानती थी, डरती भी थी। फिर रजनी सुनती किसकी थी।

दिलीप को राजेन्द्र ने साथ ले जाने की बहुत जिद की थी, पर वे बहाने बनाकर नहीं गये। जब वे बहाने बना कर असमर्थता दिखा रहे थे तब रजनी उनकी ओर तिरछी दृष्टि करके मुस्कुरा रही थी। उसका कुछ दूसरा ही अर्थ समझ कर दिलीप महाशय आनन्द-विभोर हो रहे थे। प्रगल्भा रजनी अपनी इस विजय पर मन ही मन हँस रही थी।

दिन भर मिस्टर दिलीप ने बेचैनी में व्यतीत किया। उस दिन उन्होंने अनेक पुस्तकों को उलट-पुलट डाला। मन के उद्वेग को शमन करने और सयत रहने के लिए उन्होंने बड़ा ही प्रयास किया। अन्ततः उन्होने खूब सोच-समझ कर रजनी को एक पत्र लिखा।

रजनी उस दिन उनका दिल जलाने को दो-चार बार उनके कमरे में घूम गई। एकाध बार वचन-बाण भी मारे, मुस्कुराई भी। बिल्ली जिस प्रकार अपने शिकार को मारने से प्रथम खिलाती है, उसी भाँति रजनी ने भी महाशय जी को खिलाना शुरू कर दिया।

दुलारी बड़ी मुँहफट और ढीठ औरत थी। रजनी का सङ्केत पा वह जब-तब चाहे जिस बहाने उनके कमरे में जा एकाध फुलझड़ी छोड़ आती। एक बार उसने कहा—"आज भैया नहीं हैं, इसलिए जीजी ने कहा है आपकी खातिरदारी का भार उन पर है। सो आप सङ्कोच न करें जिस चीज़ की आवश्यकता हो कहिए मैं हाज़िर करूँ, जीजी का यही हुक्म है।"

मिस्टर दिलीप ने मुस्कुरा कर कहा—"तुम्हारी जीजी इस तुच्छ परदेशी का इतना ख्याल करती है— इसके लिए उन्हे धन्यवाद देना।"

दुलारी ने हँसकर और साड़ी का छोर आगे बढ़ाकर कहा "बाबू जी हम गँवार दासी यह बात नही जानतीं, यह तो आप ही लोग जानें—कहिए तो मै जीजी को बुला लाऊँ आप उन्हें जो कहना हो कहिए।"

दिलीप हँस पड़े। उन्होंने कहा—"तुम बडी सुघड़ औरत हो।"

दुलारी ने साहस पाकर कहा—"बाबूजी आप हमें अपने घर ले चलिए, बहूजी की खिदमत करके दिन काट दूँगी।"

दिलीप महाशय ने जोर से हँसकर कहा—"मगर बहूरानी भी तो हों, अभी तो हम ही अकेले हैं।" इस पर दुलारी ने कपार पर भौंहें चढ़ाकर कहा—बाप रे, गजब है, आप बड़े लोगो की भी कैसी बुद्धि है। भैया भी क्वाँरे, जीजी भी क्वाँरी, आप भी क्वांरे।"

भूमिका आगे नही चली। गृहिणी ने दुलारी को बुला लिया। रजनी ने सब सुना तो मुस्कुरा दिया।

दोपहर की डाक आई। दुलारी ने पूछा, जीजी की कोई चिट्ठी है। दिलीप ने साहस पूर्वक मासिक पत्रिकाओं तथा चिट्ठियों के के साथ अपनी चिट्ठी भी मिला कर दुलारी के हाथ भीतर भेज दी और अब वह धड़कते कलेजे से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे।

(५)

पत्र को पढ़कर रजनी पहिले तो तनिक हँसी। फिर तुरन्त ही क्रोध से थर थर कांपने लगी। पत्र मे कवित्व पूर्ण भाषा मे प्रेम के ज्वार का वर्णन किया गया था। एकाएक उनके मन में जो

प्रेम रजनी के लिये उदय हुआ और वे रजनी के प्रति कितने आकृष्ट हुए यह सब उसमे लिखा था। वे रजनी के बिना जीवित नही रह सकेंगे। विरक्त हो जांयगे या ज़हर खा लेंगे, यह भी लिखा था। अन्त मे हाथ जोड़ कर सब बाते गोपनीय रखने की प्रार्थना भी की थी।

पत्र पढ़ने पर रजनी के होठ घृणा से सिकुड़ गये। वह सोचने लगी—यह पुरुष जाति जो अपने को स्त्रियों से जन्मत. श्रेष्ठ समझती है, कितनी पतित है। इन पढ़े लिखे लोगों मे भी आत्म-सम्मान नहीं। यह अपनी ही दृष्टि मे गिरे हुए हैं। रजनी ने पत्र को फेंक दिया! वह पलङ्ग पर लेट कर चुप-चाप बहुत सी बातों पर विचार करने लगी।

सन्ध्या होने पर दिलीप महाशय आसामी मूँगे का कुर्ता पहिन घूमने को निकले। रजनी ने देखा उनका मुंह सूख रहा है, और आँखे ऊपर नही उठ रहीं हैं। वे अपराधी की भांति चुपचाप खिसक जाना चाह रहे हैं।

रजनी ने पुकार कर कहा "कहां चले दिलीप बाबू, अभी तो बहुत धूप है संध्या को ज़रा जल्दी लौटियेगा, हम लोग सिनेमा चलेंगे।"

रजनी की बात सुनकर ये रजनी के भाई के मित्र एम० ए० पास सभ्य महाशय ऐसे हरे होगये जैसे वर्षा के छींटे पड़ने से मुर्झाए हुए पौधे खिल जाते है। उन्होंने एक बांकी अदा से खड़े होकर ताकते हुए कुछ कहा। उसे रजनी ने सुना नही, वह अपना तीर फेंक कर चली गई।

(६)

रजनी ने विषम साहस का काम किया। दिलीप महाशय झटपट ही लौट आये। आकर उन्होंने उत्साहपूर्ण वाणी में रजनी

से कहा रज्जी, मैं रिज़र्व बॉक्स के दो टिकट खरीद लाया हूँ, रजनी ने घृणा के भाव को दबा कर हँस दिया।

भोजन के बाद रजनी और दिलीप दोनों ही सिनेमा देखने चल दिये। गृहिणी ने कुछ भी विरोध न किया। सिनेमाघर निकट ही था, अतः पैदल ही रजनी चल दी। रास्ते में बातचीत नही हुई, मालूम होता है दोनो ही योद्धा अपने-अपने पैतरे सोच रहे थे। रजनी इस उद्धत युवक को ठीक कर देना चाहती थी और दिलीप प्रेम के दलदल मे बुरी तरह फँसे थे। रात भर और दिन भर में जो-जो बाते उन्होंने सोची थी वे अब याद नहीं आ रही थी। कैसे कहाँ से शुरू किया जाय, यही प्रश्न सम्मुख था। पत्र पढ़कर भी रजनी बिगड़ी नही, झगड़ा फोड़ भी नही किया, उल्टे अकेली सिनेमा देखने आई है। अब फिर सन्देह क्या और सोच क्या, अब तो सारा प्रेम उँडेल देना चाहिये। सुविधा यह थी कि रजनी अङ्गरेजी पढ़ी स्त्री थी। शेक्सपियर, गेटे टेनीसन और वायरन के भावपूर्ण सभी प्रेम-सन्दर्भों को समझ सकती थी। पर कठिनाई तो यह थी कि शुरू कैसे और कहाँ से किया जाय।

रजनी ने कनखियों से देखा, दिलीप महाशय का मुँह सूख रहा है, पैर लड़खड़ा रहे हैं। रजनी ने मुस्करा कर कहा "क्या आपको बुखार चढ़ रहा है मिस्टर दिलीप? आपके पैर डगमगा रहे हैं, मुँह सूख रहा है।" दिलीप ने बड़ी कठिनता से हँस कर कहा "नहीं-नही, मैं तो बहुत अच्छा हू!"

"अच्छी बात है।" कह कर रजनी ने लम्बे-लम्बे डग बढ़ाये।

बॉक्स मे बैठ कर भी कुछ देर दोनो चुप रहे, खेल शुरू हो-गया था, शायद खेल कोई प्रसिद्ध न था, इस लिये भीड़-भाड़ बिल्कुल न थी। बॉक्स और रिजर्व की तमाम सीटें खाली पड़ी

थीं। अपने चारों ओर सन्नाटा देख कर पहले तो रजनी ज़रा घबराई, परन्तु फिर साहस कर के वह अपनी कुर्सी ज़रा आगे खींच कर बैठ गई। कौन खेल है दोनों कुछ क्षण इसी मे डूबे रहे, परन्तु थोड़ी ही देर मे दोनों को अपना-अपना उद्देश्य याद आगया। खेल से मन हटा कर दोनों, दोनों को कनखियों से देखने लगे। एकाध बार तो नजर बचा गये, पर कब तक ? अन्त मे एक बार रजनी खिलखिला कर हँस पड़ी। उसे हँसी देख दिलीप भी हँस पडे, परन्तु उसकी हँसी मे फीकापन था।

रजनी तुरन्त ही सम्हल गई। उसने कहा-- "क्यों हँसे मिस्टर दिलीप ?"

"और तुम क्यों हँसी रज्जी ?"

दिलीप ने ज़रा साहस करके कुर्सी आगे खिसकाई। रजनी सम्हल कर बैठ गई। उसने स्थिर अकम्पित वाणी मे कहा "मै तो यह सोच कर हँसी कि तुम मन मे क्या सोच रहे हो वह मै जान गई ?"

"सच, रज्जी, तो तुमने मुझे क्षमा कर दिया ?" वे आवेश मे आकर खड़े होकर रजनी की कुर्सी पर झुके। उन्हें वहीं रोक कर रजनी ने कहा "क्षमा करने मे तो कुछ हर्ज नहीं है दिलीप बाबू, मगर यह तो कहो कि क्या तुम उसी खत की बात सोच रहे हो ? सच कहो, तुमने जो आज खत मे लिखा है क्या वह सच है ?"

दिलीप घुटनों के बल धरती पर बैठ गये, जैसा कि वे बहुधा सिनेमा मे देख चुके थे। उन्होंने भावपूर्ण ढङ्ग से दोनों हाथ पसार कर कहा—"सचमुच, रज्जी, मै तुम्हें प्राणों से बढ़ कर प्यार करता हूँ।"

"प्राणों से बढ़ कर ? यह तो बडे ही आश्चर्य की बात है दिलीप बाबू। इस पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता।"

"रज्जी विश्वास करो, तुम कहो तो मैं अभी यहाँ से कूदकर अपनी जान दे दूँ।"

"इससे क्या फ़ायदा होगा मिस्टर दिलीप, उल्टे पुलिस मुझे हत्या करने के जुर्म मे गिरफ्तार कर लेगी। परन्तु मुझे तो यह ताज्जुब है कि तुम दो ही दिन मे मुझे इतना प्रेम कैसे करने लग गये ?"

"मै तो पहली नजर ही से तुम पर मर मिटा था।"

"तुमने क्या किसी और स्त्री को भी प्यार किया है ?"

"नहीं-नहीं, कभी नही, इस जीवन मे सिर्फ तुम्हें।"

"क्यों, क्या तुम्हें कोई स्त्री मिली ही नही ?"

"तुम सी एक नहीं, रज्जी,।"

"यह तो और भी आश्चर्य की वात है, कलकत्ते मे, बनारस मे, इलाहाबाद मे, लखनऊ मे, पटने मे, कही भी मुझ सी कोई स्त्री है ही नहीं ?"

"नहीं-नही, रज्जी, तुम स्त्री-रत्न हो।"

"जापान मे, चीन मे, इङ्गलेण्ड मे, जर्मनी मे, अमेरिका मे, अरे! तुम तो सब देश की स्त्रियों से वाकिफ होंगे ?"

"रज्जी, तुम सब मे अद्वितीय हो।"

मुझे इससे बहुत शक है मिस्टर दिलीप; एक काम करो। अभी यह प्रेम मुल्तवी रहे। तुम एक वार हिन्दुस्तान के सब शहरों मे घूम फिर कर जरा अच्छी तरह देख-भाल आओ। मेरा तो ख्याल है कि तुम्हें मुझ से अच्छी कई लड़कियां मिल जावेगी।

दिलीप महाशय ने जरा जोश मे आकर कहा—"रज्जी, तुम्हारे सामने दुनिया की स्त्री मिट्टी हैं।"

"मगर यह तुम्हारा अपना वाक्य नहीं मालूम देता, यह तो पेटेन्ट वाक्य है। देखो मै हीं तुम्हे दो-तीन लड़कियों के पते

बताती हूँ। एक तो इलाहाबाद के क्रास्थवेट में मेरी सहेली है। दूसरी...... ।"

दिलीप ने बात काटते हुए कहा "प्यारी रज्जी, क्यों दिल को जलाती हो, इस दास पर रहम करो। मैं तुम्हारा बेदाम का चाकर हूँ। अपने नाजुक और कोमल हाथों का...... ।"

कहते कहते उन्होंने रजनी के हाथ पकड़ने को हाथ बढ़ाया। इसी बीच रजनी ने तड़ाक से एक तमाचा जो महाशय के मुँह पर जड़ा तो उजाला हो गया पैरों की ज़मीन निकल गई। वे मुँह बाये वैसे ही बैठे रह गये।

रजनी ने स्थिर गम्भीर स्वर में कहा "मिस्टर दिलीप, मैं तुम्हारी गलती सुधारना शुरू करती हूँ। देखो, अब तो तुम समझ गये कि ये हाथ उतने नाजुक और कोमल नहीं है जितने तुम समझे बैठे हो। कहो तुम्हारी आंख बची या फूटी? मैंने ज़रा बचा कर ही तमाचा जड़ा था। अब दूसरी ग़लती भी मैं सुधारती हूँ। देखो सामने जो वह यूरोपियन लड़की बैठी है वह मुझसे हज़ार दर्जे अच्छी है या नही। तुम दुनिया की कहते हो, मैं तुम्हें यही दिखाये देती हूँ; कहो, है या नही?"

मिस्टर दिलीप की सिट्टी गुम हो रही थी, वे चेष्टा करने पर भी नहीं बोल सके। रजनी ने, धीमे किन्तु कठोर स्वर में कहा—"बोल रे अधम, वञ्चक, लम्पट, पढ़े-लिखे गधे, मेरी बात का जवाब दे, वरना अभी चिल्ला कर सब आदमियों को मैं इकट्ठा करती हूँ।"

दिलीप ने हाथ जोड़ धीमे स्वर में कहा—"मुझे माफ़ कीजिये श्रीमती रजनी देवी, मुझे माफ कीजिये।"

रजनी ने घृणा से होठ सिकोड़ कर कहा—"अरे, तुम्हारा तो स्वर ही बदल गया, और टोन भी। अब तुम मुझे 'तुम' कह

कर नहीं पुकारोगे ? 'रज्जी' नहीं कहोगे ? बद्माश, तुम मित्र की बहिन की प्रतिष्ठा नही रख सके ? तुम जैसे जानवर किसी भले घर मे जाने योग्य, किसी की बहू-बेटी से खुल कर मिलने योग्य हो सकते हैं ?" रजनी ने यह कह कर दिलीप के दोनो कान पकड़ कर खींच लिये और तड़ातड़ ५-७ तमाचे उसके मुंह पर रसीद करके कहा "कहो, प्रेम अब कहां है ? मुझ सी लड़की कहीं दुनिया मे है या नहीं ?"

"रजनी देवी, मै आप की शरण हूँ।"

"अच्छा, अच्छा। मगर तुम तो शायद मेरे बिना जी भी नहीं सकोगे ! जाओ, कुये, नदी मे डूब मरो। क्या तुम भैया को मुँह दिखा सकोगे ?" दिलीप चुपचाप धरती पर बैठे रहे।

रजनी ने लात मार कर कहा "बोल रे बद्माश बोल !"

दिलीप ने गिड़गिड़ा कर कहा "धीरे, रजनी देवी, लोग सुन लेंगे तो यहाँ भीड़ हो जायगी।"

रजनी ने कहना शुरू किया "कुछ पर्वाह नहीं। हाँ, तुम क्या चाहते हो कि स्त्रियों को तुम इसी प्रकार फुसलाओ। वे या तो पर्दे मे घुग्घू बनी बैठी रहें, और यदि स्वाधीन वायु मे जीना चाहें तो तुम्हारे जैसे साँपों से वे डसी जायँ ? क्यों ? भैया के साथ विवाद मे तुम सदा मेरा पक्ष लेते थे सो इसी लिये ? कहो ? तुम समझते हो भैया अनुदार हैं, नहीं जानते उन्होंने मेरा, मेरी आत्मा का निर्माण किया है। यह उन्हीं का साहस था कि तुम्हें अकपट भाव से उसी भाँति मेरे सम्मुख उपस्थित किया जिस भाँति वे स्वयं मेरे सम्मुख आते हैं। पर तुम नीच लम्पट दो दिन मे ही बहिन के समान अपने मित्र की बहिन से प्रेम करने लगे ? कहो, तुम्हारे घर कोई बहिन है या नही ? इसी भाँति तुम उसे पृथ्वी की अद्वितीय स्त्री कहते हो ?"

दिलीप महाशय के शरीर में रक्त की गति रुक रही थी, बोल नहीं निकलता था। उन्होंने रजनी के पैर छूकर कहा—"आह, चुप रहो, कोई सुन लेगा……।"

रजनी क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति कहती ही गई—

"अरे जब तक तुम जैसे अपवित्र लुच्चे युवक हैं स्त्रियाँ कभी निर्भय नहीं हो सकती। कहो—क्या हमें संसार में हँसने, बोलने, घूमने, फिरने, अमोद-प्रमोद करने की जगह ही नहीं, हम चोर की भाँति लुक-छिपकर, पापी की भाँति मुँह ढँककर दुनिया में जीएँ। और यदि ज़रा भी आगे बढ़े तो तुम जैसे लफंगे उसका ग़लत अर्थ लगा कर अपनी वासनाएँ प्रकट करें? याद रक्खो, स्त्रियों को निर्भय रहने के लिये तुम जैसे खतरनाक नर-पशुओं का न रहना ही अच्छा है। जानते हो—जब मनुष्यों ने वनों को साफ करके सभ्यता विस्तार की थी तब वनचर खूँखार पशुओं को सर्वंश नाश कर दिया था—उनके रहते वे निर्भय नहीं रह सकते थे। सच्ची सभ्यता वह है जहाँ स्त्रियाँ निर्भय हैं—वनचर खूँख्वार जानवरों के रहते मनुष्य निर्भय नहीं रह सकते थे और नगरचर गुण्डों के रहते स्त्रियाँ निर्भय नहीं रह सकतीं। इसलिये मैं तुम्हारे साथ वही सलूक किया चाहती हूँ जो मनुष्यों ने वनचर पशुओं के साथ किया था।"

इतना कहकर रजनी ने एकाएक एक बड़ा सा छुरा निकाल लिया।

छुरे को देखते ही दिलीप की घिग्घी बँध गई। वह न चिल्ला सकते थे, न भाग सकते थे, उनकी शक्ति तो जैसे मर गई थी। उन्होंने रजनी के पैरों में सिर डाल कर मुर्दे के से स्वर में कहा—"क्षमा कीजिये देवी, आप इस बार इस पशु को क्षमा कीजिये।"

रजनी ने धीरे गम्भीर स्वर मे कहा--"क्षमा मैं तुम्हें कर सकती हूँ परन्तु तुम एक खतरनाक जानवर हो, जिन्दा रहोगे तो जाने कितनी बहिनों को खतरे मे डालोगे।"

"मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि मै जीवन मे प्रत्येक स्त्री को बहिन के समान समझूगा।"

"तुम्हारी प्रतिज्ञा पर मुझे विश्वास नही।"

"मै कसम खाता हूँ।"

"किसकी ?"

"आपके चरणों की।"

"धुत् खबरदार। इतना साहस न करना।"

"परमेश्वर की।"

"नास्तिक। तुम्हारे परमेश्वर का भरोसा।"

"अपनी माता की, पिता की।"

"नहीं, मै नही विश्वास करती कि तुम माता-पिता की इज्जत करते होगे।"

"आह देवी, इतना पतित न समझो।"

"तुम बड़े पतित हो।"

"तब जिसकी कहो उसकी कसम खाऊँ।"

"अपने प्राणों की कसम खाओ।"

"मै अपने प्राणों की कसम खाता हूँ कि भविष्य मे मै बहिनों के प्रति कभी अपवित्र भाव नही आने दूंगा।"

"अच्छी बात है, फिलहाल मै तुम्हें क्षमा करती हूँ, कुर्सी पर बैठ जाओ।" रजनी ने कठिनाई से अपने होठों की कोर मे उमड़ती हँसी को रोका।

जान बची लाखों पाये, दिलीप महाशय धम से कुर्सी पर बैठ गये। खेल चल रहा था, वाजे बज रहे थे, कोई गाना हो रहा

था, स्क्रीन मे धमा-चौकड़ी हो रही थी, इस धूम-धाम ने और पीछे की सीट के सन्नाटे ने इस 'रजनी-काण्ड' की ओर किसी का भी ध्यान आकृष्ट नही होने दिया। थोड़ी देर मे इन्टरवेल हो गया, बत्तियाँ जल गईं। प्रकाश हो गया।

रजनी ने कहा—"मै घर जाना चाहती हूँ, दिलीप बाबू, आप चाहें तो यही ठहर सकते हैं।"

दिलीप ने आज्ञाकारी नौकर की भाँति खड़े होकर कहा—"चलिये फिर।"

रजनी चुपचाप चल दी।

(७)

दूसरे दिन तमाम दिन मिस्टर दिलीप कमरे से बाहर नहीं निकले, सिर-दर्द का बहाना करके पड़े रहे। भोजन भी नहीं किया। अभी उन्हें यह भय बना हुआ था कि उस बाघिनी ने यदि राजेन्द्र से कह दिया तो गजब हो जायगा।

सन्ध्या समय रजनी ने उनके कमरे मे जाकर देखा कि वे सिर से पैर तक चादर लपेटे पड़े हैं। रजनी ने सामने की खिड़की खोल दी और एक कुर्सी खींच ली। उस पर बैठते हुये उसने कहा—"उठिये मिस्टर दिलीप, दिन कब का निकल चुका और अब छिप रहा है।"

दिलीप ने सर निकाला—उनकी आँखे लाल हो रही थीं, मालूम होता था, खूब रोये हैं। उन्होंने भर्राए हुए गले से कहा—"मै आपको मुँह नही दिखा सकता, मै अपनी प्रतिष्ठा की चर्चा करने का साहस नही कर सकता पर आप अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये वचन दीजिये कि आप घर मे किसी से भी यह बात नहीं कहेंगीं।"

"मै तो तुम्हें क्षमा कर चुकी दिलीप।"

"यह कहिए किसी से भी नही कहेंगीं।"

"अच्छा, नही कहूँगी, उठो।"

"किसी से भी नही।"

"किसी से भी नही।"

"भैया से भी नही।"

"अच्छा, अच्छा, भैया से भी नहीं।"

"और उस दुष्टा दुलारी से भी नहीं।"

रजनी हँस पड़ी, बोली—"अच्छा, उससे भी नही। अब उठो।"

"वह जब मुझे देखती है मुँह फेर कर हँस देती है।"

"वह शायद समझती है, तुम जैसा पुरुष पृथ्वी पर और नही हैं।"

"अब जब आप क्षमा कर चुकीं, फिर ऐसी बात क्यों कहती हैं।"

रजनी हँस कर चल दी।

दूसरे दिन राजेन्द्र ने आने पर देखा कि दिलीप अपना बोरिया-बसना बाँधे जाने को तैयार बैठे है। मुँह उतरा हुआ है और वे बुरी तरह घबराये हुए हैं। राजेन्द्र ने हँस कर कहा—"मामला क्या है? बुरी तरह परेशान हो रहे हो।"

"तार आया है माता जी सख्त बीमार हैं। जाना पड़ रहा है।"

"देखें कैसा तार है। अभी तो २-४ दिन भी नहीं हुये।"

दिलीप तार के लिये टाल-टूल करके घड़ी देखने लगे। बोले—"अभी ४० मिनिट हैं गाड़ी मिल जायगी।"

दिलीप के जाने की एकाएक तैयारी देखकर राजेन्द्र परेशान से हो गये। उन्हें दिलीप की टाल-टूल से सन्देह हुआ कि शायद घर मे कोई कुछ अप्रिय घटना हुई है।

उन्होंने रजनी को बुलाकर कहा—"रजनी, दिलीप जा रहे हैं मामला क्या है?"

रजनी ने आकर सिर से पैर तक दिलीप को देखकर कहा "कह नही सकती, दुलारी को बुलाती हूँ उसे शायद कुछ पता हो।"

दिलीप ने नेत्रों मे भिक्षा याचना भरकर रजनी की ओर देखा। उसे देखकर रजनी का दिल पसीज गया। उसने आगे बढ़कर कहा "क्यों जाते हो दिलीप बाबू।"

दिलीप की आँखे भर आई। उन्होने झुककर रजनी के पैर छुए और कहा "जीजी, सम्भव हुआ तो मै फिर जल्द ही आऊँगा।" उन्होने घड़ी निकाली और राजेन्द्र से कहा "जरा एक ताँगा मँगा दो।"

राजेन्द्र ने कहा "तब जाओगे ही।" वे ताँगे के लिये कहने बाहर चले गये। रजनी कुछ क्षण चुप खड़ी रही, फिर उसने कहा" दिलीप बाबू, कहिये मुझसी कोई स्त्री दुनिया मे है या नहीं ?"

दिलीप ने एक बार सिर से पैर तक रजनी को देखा, फिर उससे कहा "अब तुम मुझे चाहे मार ही डालो, पर रज्जी तुम सी एक भी औरत दुनिया मे न होगी।"

इस बार फिर से 'तुम' और 'रज्जी' का घनिष्ट सम्बोधन पाकर रजनी की आँखों से टप टप दो बूद आँसू गिर गये। वह जल्दी से वहाँ से घर के भीतर चली गई।

ताँगा आ गया। सामान रख दिया। गृहिणी के पैर छूकर ज्योंही दिलीप बाबू ड्योढ़ी पर पहुँचे तो देखते क्या हैं कि रजनी टीके का सामान थाल मे धरे रास्ता रोके खड़ी है। दिलीप और राजेन्द्र रुक कर रजनी की ओर देखने लगे। रजनी के पास ही दुलरिया भी अपनी गहरी, लाल रङ्ग की टसरी साड़ी पहने खड़ी थी। उसके हाथ मे थाल देकर रजनी ने दिलीप के माथे पर रोरी-दही का टीका लगाया, चावल सिर पर बखेरे और दो तीन दाने

चने चबाने को दिये। इसके बाद उसने मुट्ठी भर बताशे दिलीप के मुख मे भर दिये और वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

दिलीप न हँस सके। उन्होंने उमड़ते हुए आँसुओं के वेग को रोककर फिर झुककर रजनी के पैर छुए। इसके बाद मनीबेग निकाल कर थाल मे डाल दिया।

राजेन्द्र ने कहा "अरे दिलीप, तुम रजनी की इस ठगविद्या में आगये। मुझे भी यह इसी तरह ठगा करती है।"

दिलीप ने कहा "बकवाद मत करो, चुपचाप टिकिट और ताँगे के पैसे निकालो।"

इसी बीच दुलरिया ने जल से भरा लोटा आगे बढ़ाकर कहा "भैया, सवा रुपया इसमे भी तो डालो।"

क्षण भर दिलीप सकपका गए। उन्होंने अपनी अँगूठी उतार जलपात्र में डाल दी। दुलरिया ने मृदुमन्द मुस्कान होठों पर बखेर कर कहा—"हम का लेचलो भैया, दुलहिन की सेवा करेंगी।

दिलीप कुछ जवाब न देकर झपट कर भागे और राजेन्द्र का हाथ पकड़ कर ताँगे में जा बैठे।

दुलारी ने एक बार हँसती आँखो से रजनी को देखा, वह रो रही थी।

चिट्ठी की दोस्ती

सिस्टर लाल ने इसी उम्र मे तमाम दुनिया खूँद मारी थी। इसी साल वे वैरिस्टर हो कर विलायत आये थे। घर के रईस, दिल के बादशाह, तबीयत के आज़ाद आदमी थे। तीन साल के लम्बे अर्से के बाद जो वे आये तो देखते ही तबीयत हरी हो गई। आते ही उन्होंने जो बातों का रङ्ग बाँधा, देश विदेश की आप बीती सुनानी शुरू की, एक से एक बढ़ कर बाते, कहाँ वे बेवकूफ बने, कहाँ ठगे गये, कहाँ तिकड़म भिड़ाई, कहाँ फँसे आदि जो बातें उन्होंने बयान कीं, तो सुनकर तबीयत फड़क गई। तीन-चार दिन चुटकी बजाते गुज़र गये। मिस्टर लाल का मेरे घर आना और मेरे साथ रहना मेरे लिये गनीमत था। आप तो जानते ही हैं कि मै अकेला दुनियां भर की सब आशाओं से रहित ऐसा सूखा ठूंठ हूँ जिसका सारा रस सूख गया हो, सारे पत्ते झड़ गये हो, सारी शोभा लुट चुकी हो, न कोई मेरा दोस्त-मुलाकाती, न सगे न सम्बन्धी, दोस्त-मुलाकाती उसके होते हैं, जिससे लोगों के काम सरते हैं, मतलब निकलते हैं, मुझसे किसी का क्या काम सर सकता है। न किसी के लेने में; न देने में, इसलिये

मेरे पास कोई क्यों आने लगा ? महीनो के महीने बीत जाते हैं, मै अकेला अपने घर मै उदास, सुस्त बैठा कुछ सोचता रहता हू। सोचने की वहुत-सी बातें नही हैं, सिर्फ यही कि मनुष्य जीता क्यों है ? काम-काज के झंझट में पिसता क्यों है। पाप-पुण्य के जञ्जाल में उलझता क्यों है ? अपनी और पराई दुनिया बनाता क्यों हैं ? कोई २५ वर्ष हुए—जब से मन्नू की माॅ मरी है, ऐसा मालूम होता है कि ससार मे हमेशा सन्ध्या काल ही रहता है, प्रभात कभी होता ही नहीं, परन्तु एम० ए० फ़ाइनल करने के बाद जब एक ही हफ्ते बाद मुन्ना भी एकाएक चल बसा, तब से रात ही रात नजर आती है, जीवन की इस अॅधेरी रात में सूरज और चाॅद, टिमटिमाते दिये और इष्टमित्र सब दूर के चम-चम चमकते तारे से प्रतीत होते हैं। मै मशीन की भाॅति कालेज से घर और घर से कालेज गत २५ बरस से जाता-आता रहा हूॅ। और भी कही दुनिया है, यह मै अब भूल-सा गया हूॅ।

परन्तु मिस्टर लाल की बात दूसरी है, उनके सीने मे एक धड़कता हुआ हृदय है, जीवन उनके लिये आशा और उल्लास से परिपूर्ण एक ज्योति की लौ है, इसीसे उनके आने से मुझ मे भी जैसे जीवन का कुछ स्पन्दन आ गया है, वे जब बातें करते-करते खिलखिला कर हॅसते हैं तब मेरे भी सूखे होठों में हॅसी की एक अनभ्यस्त रेखा फूट पड़ती है और मेरे गालों की झुर्रियां जैसे मुखरित हो उठती है।

लाल ने जब प्रेम के एक से एक बढ़ कर अनोखे साहसपूर्ण किस्से सुनाये, तो उन्हें सुन-सुन कर मन कैसा कुछ हो उठा। मैने कहा—" मिस्टर लाल, प्रेम इतना सुलभ और जीवन के इतना निकट है, यदि यह मुझे मालूम होता तो ''?' 'तो ?'—

लाल ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा "ओह! आप यदि प्रेम के प्यासे हैं तो अभी भी समय है मिस्टर सिह, मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ। आप क्या प्रेम-रस चखा चाहते हैं?"

बहुत दिन बाद मै एकाएक हँस पड़ा। हँसने की बात ही थी, अब ५० साल जीवन के पार करने पर मै प्रेम का रस चख सकता हूँ? यह तो बड़ी ही अजीब बात है।

मेरे हँसने का मतलब मिस्टर लाल समझ गये। उन्होंने कहा 'प्रोफेसर, आप क्या मेरी बात को असम्भव समझते हैं?'

'ओह! बिल्कुल असम्भव, मिस्टर लाल।'

'परन्तु मै शर्त लगाता हूँ।'

'अब मुझे बनाओ मत भाई।'

'ओह! आपको एक बात का पता नही है, प्रोफेसर।'

'कौन-सी बात का?'

'आप यूरोप कभी गये या नहीं?'

'नहीं गया।'

'तभी। यूरोप मे कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं, जो पत्र-व्यवहार से दोस्ती करा देती हैं। उन्हें कुछ फ़ीस दे देनी पड़ती है और लिख देना पड़ता है कि इस प्रकार के आदमी से हमे दोस्ती करनी है। बस, वे आनन-फानन सब बन्दोबस्त कर देते हैं।'

मैने सुन कर अचरज से कहा—'यह तुम कह क्या रहे हो, मिस्टर लाल।'

'आप सुनिए तो। मेरी डायरी मे ऐसी संस्थाओं के कुछ पते हैं। ठहरो, देखता हूँ।'—यह कह कर उन्होने अपनी डायरी लेकर उलट-पलट करनी शुरू की। थोड़ी देर मे बोले—'मिल गया। अभी लिखो, कहिए आप कैसे आदमी से दोस्ती किया चाहते हैं?'

मुझे जैसे रस की एक बूँद मिली। मैंने हँस कर कहा 'आदमी से या···।'

'अजी औरत से सही, आप जैसी चाहें ?'

'मैं जैसी चाहूँ ? खूब कही, मिस्टर लाल।' और मैं बड़े जोर से हँस पड़ा।

झुंझला कर मिस्टर लाल ने कहा 'खुदा के लिये कहिये भी कुछ ?'

मेरी सारी संजीदिगी जैसे गायब होगई। मैंने कहा—फर्ज करो, एक राजकुमारी से, जिसकी अच्छी खासी जायदाद हो···'

लाल ने नोट करते हुए कहा 'उम्र कितनी हो ?'

'यही १६ या २० साल, अत्यन्त सुन्दरी, खुश-मिजाज, और·' मैं फिर अपने को काबू में न रख सका, और जोर से हंस पड़ा।

मिस्टर लाल हँसे नहीं। वे कुछ लिखते हुए बोले—'हाँ, एक बात बताइये ? आपका सर्व-प्रिय विषय क्या है, प्रोफेसर ?'

'पुरातत्व, इसमें मैंने पदक प्राप्त किये हैं।'

"ठीक है, मिस्टर लाल ने एक पत्र लिख डाला। लिख चुकने पर पत्र मुझे दिखाया, उसमें लिखा था—'एक प्रख्यात पुरातत्वविद् भारतीय विद्वान प्रोफेसर यूरोप की एक ऐसी राजकुमारी से मित्रता किया चाहते हैं, जो खूब धनी, खुश मिजाज, सुन्दरी और मृदुल स्वभाव की हो।' उसने पत्र और संस्था की फीस उसी दिन अमेरिका के शिकागो शहर को भेज दी। वह शाम, एक मज़े की दिलचस्प शाम गुजर गई।

(२)

कोई डेढ़ महीने बाद शिकागो से एक पत्र आया। पत्र में मुझे संस्था का सभ्य बनने के लिए मुबारकबादी दी गई थी।

और लिखा था–संस्था के अनेक सदस्य एक भारतीय पुरातत्वविद से परिचय प्राप्त करने के इच्छुक हैं। इसके बाद लिखा था 'स्पेन की राजकुमारी सोफ़िया जो अतुल सम्पिति की उत्तराधिकारणी हैं और जो शिकागो युनिवर्सिटी की ग्रेजुएट है, अपने को आपका मित्र समझ कर गौरवान्वित समझती है। राजकुमारी अभी १६ ही वर्ष की है, उसकी प्रार्थना है कि आप उन्हें सीधा पत्र लिख कर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाये।'

पत्र पढ़ कर मेरी नशों में खून नाचने लगा। मैं समझ ही न सका कि आया यह सत्य है या गोरख-धन्धा। मुझे संसार सुन्दर सा प्रतीत होने लगा और ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे रूखे-सूखे जीवन म रस-वर्षण हुआ है।

मिस्टर लाल को मैंने सब हकीकत लिख कर राय पूछी कि अब क्या करना चाहिये। तीसरे दिन उनका पत्र मिला। लिखा था—पौबारह हैं; प्रोफेसर। पत्र का ड्राफ्ट भेज रहा हूँ, इसे खूब वढ़िया कागज पर टाइप करके भेज दो। ड्राफ्ट का अभिप्राय यह था —

"प्रिय राजकुमारी,

आपका परिचय और मैत्री प्राप्त करके मै अपने को संसार का सबसे अधिक भाग्यवान् पुरुप हूँ। ईश्वर करे हमारी यह मैत्री दिन-दिन गम्भीर और सुखद होती जाय। राजकुमारी, यद्यपि हम लोगों को परस्पर दर्शनों का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है; पर हिन्दू फिलॉसफी के विश्वास पर मै यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि हम लोग पिछले जन्मके मित्र हैं। प्रिय राजकुमारी, विदा। मै आपके वहुमूल्य पत्र और मैत्री के किसी प्रिय चिन्ह प्राप्ति की आशा में हूँ।

आपका,

........"

कॉपते हाथों से मैने पत्र लिखा। टाइप करना मैंने पसन्द नहीं किया। पत्र लिखते समय मेरे हृदय की धड़कन बढ़ रही थी, मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे जीवन में रस का झर-झर झरना झरने लगा। स्वय ही मैंने पत्र को पोस्ट कर दिया।

[३]

यथासमय जवाब मिल गया। लिफाफे को देखते ही मन-मयूर नाचने लगा। भीतर सुगन्धित पत्र किन्ही दिव्य हाथों से लिखा हुआ था। अक्षर मोती से थे और पत्र के एक कौने पर सुनेहरा मोनोग्राम था। पत्र के साथ ही प्रेमिका का एक छोटा-सा, किन्तु अप्रतिम चित्र था। कोई भारतीय पुष्प उसकी समता नही कर सकता। गुलाब और कमल प्रगल्भ है, उनमें वह नजाकत और नाजुकपन कहाँ? उन आँखों सें जो आवाहन, होठों मे जो जीवन, सारी मुखाकृति मे जो माधुर्य था, उसकी न समता हो सकती है, न वर्णन। चित्र देखने मे मै इतना तन्मय हुआ कि पत्र पढ़ने का ध्यान ही न रहा। चित्र जैसे बोल उठेगा, वे होठ जैसे हिलने लगे, आखे जैसे हॅसने लगी और मै जैसे उस चित्र मे खो गया।

कुछ देर बाद पत्र का ध्यान आया। पत्र मे लिखा था—
"प्यारे प्रोफेसर,

तुमसे मित्रता प्राप्त कर मै अत्यन्त आनन्दित हूँ। जब कभी भी हम मिलेंगे, यह आनन्द कितना अधिक बढ़ जायगा। ओह! मै तुम्हारे रहस्यमय देश को और उससे भी अधिक तुम्हें देखने को कितनी आतुर हूँ, परन्तु जब तक हम मिलते नही, तब तक अपने विस्तृत हालात लिखो, जिससे मै तुम्हें, अपने घनिष्ठ मित्र को, भली भाति जान सकूँ। और अपना एक फोटो भी भेजो। देखना, विलम्ब न करना।

तुम्हारी सच्ची,
सूफिया

पत्र का क्या जवाब दूँ, कुछ भी समझ न पाया। पत्र किसी भाँति लिखा जा सकता है, पर फोटो का क्या किया जाय? क्या इस अनिन्द्य सुन्दरी को मैं अपने उजडे हुए वेदनाओं और निराशाओं की रेखाओं से भरे मुख का चित्र भेजूँ? इसे देख कर क्या उसका कोमल भावुक विश्वस्त हृदय टुकड़े-टुकड़े न हो जायगा? क्या उसकी उल्लासपूर्ण आशा का तार न टूट जायगा? मैंने किसी प्रकार पार पाने में असमर्थ होकर मिस्टर लाल को एक दिन के लिए चले आने का तार भेज दिया। मिस्टर लाल आये और पत्र को देख कर हँसने लगे। उनके हँसने से चिढ़ कर मैंने कहा—'आपने एक अत्यन्त अपमानजनक परिस्थिति में मुझे डाल दिया है, अब कहिए क्या किया जाय? यह फोटो का मामला सबसे अधिक कठिन है, मैं अपना फोटो किसी हालत में उसे नहीं भेज सकता।' मिस्टर लाल ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा—'तो फिर फ़ोटो के लिए कोई बहाना बना दिया जाय? अभी सिर्फ़ एक बढ़िया-सा प्रेम भरा पत्र ही भेज दिया जाय?' मिस्टर लाल की यह तजवीज़ मुझे बिलकुल नहीं रुची। भला फ़ोटो के लिए कौन-सा बहाना ढूँढ़ा जा सकता है, फिर उस बहाने से फायदा? वहाँ से फिर माग आयेगी? इसके सिवा जो यह अद्भुत मैत्री सम्बन्ध जोड़ा गया है, वह टाल-टूल करने के लिए नहीं, प्रगाढ़ प्रेम के लिए।

मिस्टर लाल ने अन्त में सोच-विचार कर एक तजवीज़ पेश की और मेरे मन में न जाने कैसा कुछ नटखटपन समाया कि मैंने वह स्वीकार कर ली। एक बढ़िया फ़ोटोग्राफ़र से मिस्टर लाल का फोटो उतरवाया और अपनी सारी सहृदयता खर्च करके मैंने एक पत्र लिखा। फ़ोटो के नीचे कांपते हाथों से मैंने अपना नाम लिख दिया। पत्र और वह फोटो रजिस्ट्री द्वारा भेज दिया गया।

ठीक समय पर जवाब आगया। सेण्ट की भीनी मन-मोहक सुगन्ध से वह पत्र शराबोर था। उसमें जैसे किसी उन्मत्त हृदय ने लिखा था—'अरे! तुम इतने सुन्दर हो प्रिय! न केवल आकृति से ही, प्रत्युत हृदय से भी मैं तुम्हारी मोहिनी-छवि और उससे भी अधिक मधुर-भाव, जो तुम्हारे प्रेमी हृदय के कम्पन हैं, पाकर कृत-कृत्य होगई हूँ। मेरी आत्मा तृप्त होगई है। मेरे प्रिय मित्र, मेरी धृष्टता क्षमा करो, मुझे साफ़-साफ़ लिखो, क्या तुम विवाहित हो? क्या तुमने अभी तक किसी स्त्री से प्रेम किया है? क्या तुम कुछ आशान्वित हो या तुम निराश हो चुके हो? मेरे प्यारे प्रोफेसर, मुझे तुम कुछ कटु सत्य भी तो कहने दो, जब मैत्री हुई तब भेद क्या? तुम्हारी ये सुन्दर आँखें और मदभरे होठ जब ग़ौर से देखती हूँ तो मुझे उनसे कुछ भय, कुछ आशङ्का-सी प्रतीत होती है, उनमें कैसा कुछ चोचला छिपा है। इन नेत्रों में तुमने क्या सच-मुच ही कोई भेद नही छिपा रखा है? परन्तु मैं कदाचित् तुम्हारे साथ अन्याय कर रही हूँ। तुम साधारण पुरुष तो नहीं हो। एक वैज्ञानिक, एक अन्वेषक और एक प्रोफेसर हो। ओह! मैं नहीं जानती कि तुम मुझे कैसे क्षमा कर सकोगे, परन्तु मैं सिर्फ यह चाहती हूँ कि मैं शीघ्र से शीघ्र तुम्हारे हृदय के निकट आऊँ, परन्तु ये आखे? जाने दो मुझे तुम पर विश्वास करना चाहिए, मैं तुम पर विश्वास करती हूँ। मेरे प्यारे प्रोफेसर! बिदा, परन्तु चिरकाल के लिए नहीं। मैं तुम्हें शीघ्र ही दूसरा पत्र लिखूँगी, परन्तु तुम उसकी प्रतीक्षा मत करना, जल्द से जल्द पत्र लिखना, अपने रिसर्च की फ़ाइलें भी भेजो, मैं उनका अध्ययन किया चाहती हूँ।

तुम्हारी,

सूफ़िया"

मैंने बारम्बार पत्र लिखा, सूफ़िया की कोमल भावुक मूर्ति हूबहू जैसे मेरी आँखों के आगे आ खड़ी हुई। मिस्टर लाल ने कई बार लिख कर मुझसे पूछा कि क्या जवाब आया है? पर मैंने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया। इस सरला-तरला बालिका को ठगने का मन में बड़ा अनुताप हो रहा था। परन्तु जो हो गया सो हो गया। मैंने यह भेद किसी से नहीं कहा।

[४]

दिन बीतते चले गये। महीने और वर्ष बीत गये। हम लोगों की मित्रता गम्भीर प्रेम में परिवर्तित हो गई। सूफिया मुझसे मिलने को विकल रहने लगी। उसने अनेक बार मुझे यूरोप की यात्रा करने का आमन्त्रण दिया। खर्च के सम्बन्ध में निश्चित रहने का भी सङ्केत किया; पर हाय, मैं अपने शरीर और चेहरे को कहाँ छिपाऊँ? उसके साथ जो मैंने यह प्रवञ्चना की थी, वह जैसे दिन पर दिन मेरे ऊपर बोझ होकर लदने लगी। उसका बोझ बढ़ता ही गया और जैसे मैं उसके नीचे पिसता गया। मिस्टर लाल से कई बार मुलाकात हुई; उन्होंने मुझसे अनेक बार सूफ़िया के सम्बन्ध में पूछा; पर हमेशा मैंने उन्हें टाल दिया। अब सूफ़िया और अपने बीच किसी को आने देना मुझे सहन न था। मेरी ईर्षा और क्रोध के सब से बड़े भाजन मिस्टर लाल ही थे। उनकी ही मोहक और वासनामयी मूर्ति सूफ़िया के हृदय में मेरा प्रतिनिधित्व करती थी। हाय, आप हीं कहिए कि मैं इसे कैसे सहन कर सकता था? लाल अब मुझे फूटी आँखों भी नहीं सुहाते थे, वे ही मेरे सब से अधिक प्रतिस्पर्धी हैं। सूफ़िया को मैं जो पत्र लिखता था, उसमें मैं अपनी आयु मर्यादा को भूल जाता था। हम दोनों अब एक अटूट प्रेमी थे। हम दोनों ही अब परस्पर मिलने के लिए अत्यन्त व्याकुल थे, मैं इस बात को

मानो भूलने-सा लगा था कि जब हम मिलेंगे, हमारा स्वप्न टूट जायगा। सम्भव है कि सूफ़िया मुझे घृणापूर्वक वञ्चक, ठग कह कर तिरस्कार कर दे, और मेरा सारा संसार अँधेरा हो जाय, आह! फिर मैं क्या जीवित रह सकूँगा? मुझे निश्चय अपने प्राण-त्याग करने पड़ेंगे। परन्तु असल बात तो यह है कि मैं उसे मुँह नही दिखा सकता। उसके सन्मुख आने से प्रथम ही मरना होगा। दिन बीतते जाते थे और मेरे मन की विकलता बढ़ती जाती थी। एक दिन एकाएक तार मिला, सूफिया का था। वह दूसरे ही दिन बम्बई पहुँच रही थी, पढ़ कर पैरों तले से ज़मीन निकल गई। कुछ करते-धरते न बन पड़ा। संसार घूमता-सा नज़र आने लगा! अब क्या होगा? और कोई भी चारा न था, मैंने मिस्टर लाल को तार देकर तुरन्त बुलाया। वे आये, तार देख कर वे भी जरा चकराये; किन्तु अब तो एक ही मार्ग था कि मैं अपनी जगह मिस्टर लाल को दूं। मैं सूफिया को लाल के हवाले कर दूं और आप लोहू का घूंट पीकर बैठ जाऊं या जान दे दूं। परन्तु यह एक मात्र मार्ग भी निरापद न था। इतने लम्बे अर्से तक जो पत्र-व्यवहार हुआ है, परस्पर के हृदय का जो विनिमय हुआ है, हम दोनों जो एक दूसरे के इतने निकट आ गये हैं, इसका क्या होगा? क्या मिस्टर लाल मेरा सच्चा स्थान ग्रहण कर सकेंगे? इसकी कोई सम्भावना नहीं दीखती, परन्तु अब तो और कोई उपाय नहीं है, यह तो सम्भव ही नहीं हो सकता कि मैं सूफिया पर अपना भेद खोल दूं। अपना मनहूस चेहरा लेकर उसके सामने जा खड़ा होऊं! मैंने सब बातें समझा-बुझा कर मिस्टर लाल को सूफिया के पास भेज दिया और कह दिया कि जैसे बने वैसे जल्द से जल्द उसे वापस भेज देना। मिलन-क्षण की प्रतीक्षा ही रही और बिदा की व्यवस्था हो गई। वाह! ऐसा प्रेम भी दुनिया में किसी ने न किया होगा!

क्षण-क्षण पर मै मिस्टर लाल के पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था, रह-रह कर हृदय कांप उठता था। क्या परिणाम होगा, समझ नहीं पड़ता था। एक दिन सुबह अपने कमरे में बैठा मै सूफिया के चित्र को निराश भाव से देख रहा था। मन कैसा कुछ हो रहा था। सोच रहा था एक अनोखा खेल खेला। खेल ही खेल में अलभ्य निधि पाई और खो दी। मुझे मालूम हुआ धीरे से द्वार खुला। सोचा, नौकर आया होगा। कालेज का समय हो रहा था। वह शायद भोजन के लिये बुलाने आया होगा। मैने बिना ही उस ओर देखे कहा—'ठहरो गोपाल, मै अभी आता हूं।' पर कमरे में जैसे कुछ सौरभ-सा फैल गया। मै ऑख उठा कर देखने लिए विवश हो गया। देखा, जीती-जागती सूफ़िया थी। मैने कुर्सी से खड़ा होना चाहा, पर लड़खड़ा कर गिर गया। परन्तु दूसरे ही क्षण सूफ़िया मेरी गोद में थी। वह मेरी छाती में सिर दिये सिसक-सिसक कर रो रही थी। मै जैसे ब्रह्माण्ड को फोड़ कर एक अगम लोक में उठा जा रहा था।

अंत में मैने अपने होश-हवाश कायम किये। मैने साहस बटोर कर कहा—'सूफ़िया राजकुमारी' तुमने अचानक ही मुझे गिरफ्तार कर लिया। मुझे मरने का अवसर नहीं दिया, जो मेरी इस प्रवञ्चना का सच्चा दण्ड था!'

सूफ़िया ने शिथिल बाहें फिर मेरे गले मे डाल दीं। उसने नील-आकाश की भॉति स्वच्छ ऑखों से मेरी ओर देर तक ताकते रहने के बाद कहा—'प्यारे, तुम पूरे ठग और भयानक जादूगर निकले। तुमने पहले मुझ पर जादू किया और फिर मुझे ठग लिया।'

उसने उसी भॉति मेरी गोद मे लेटे-लेटे सब बाते कहीं। उसने बताया कि उसे मेरा छल तो बहुत दिन हुए मालूम हो गया

था। मेरा असली चित्र भी एक वैज्ञानिक पत्रिका से मिल गया था। इतने पर भी उसका प्रेम प्रगाढ़ होता गया। उसने कहा—'प्रेम तो आत्मा की वस्तु है, शरीर और वासना से उसका क्या सम्बन्ध ?' वह कहती गई—'उसने वह प्रेम पा लिया जो स्त्री-जाति के जीवन का सहारा है। धन्यवाद है ईश्वर का कि तुम्हारी आँखों और होठों में वह अप्रियभाव नहीं छिपा है, जो तुम्हारी भेजी हुई तुम्हारे मित्र की तस्वीर में था। जो, वे जब मुझे बम्बई में मिले—भली भाँति अनुभव करने में आया।'

बड़ी देर तक मैं बोल ही सहीं सका। पर उस अद्भुत लड़की ने मेरा सारा सङ्कोच भगा दिया। फिर तो दिनो-रात हमारी बातें हुईं। सूफिया ने मिस्टर लाल को जैसा बनाया, जैसी उनकी गति बनी, उसे सुन कर हँसना रुका नहीं; मिस्टर लाल फिर मुझे मिले भी नही। सूफिया ने नही माना और मैंने कॉलेज से इस्तीफा देकर सूफ़िया के साथ यूरोप की यात्रा की। इस के वाद सूफिया के प्रथम ही से किए गये प्रबन्ध के अनुसार मुझे स्पेन की यूनीवर्सिटी में एक अच्छी जगह मिली और अपने विशाल बन्धु-बान्धवों को आश्चर्य-चकित करके सूफिया ने मुझे विवाह-सूत्र में बाँध लिया।

तसवीर

बहस का मुद्दा यह था कि फ़ोटोग्राफी चाहे भी जितनी उन्नति कर ले, यह चित्रकला नहीं कहला सकती। चित्रकला एक महान् कला है। कला विकास मस्तिष्क से होता है जिसमे जीवित विचार होते हैं, मशीन से नहीं, जिसमे सिर्फ छाया ही को अङ्कित किया जा सकता है। फोटोग्राफी तो सिर्फ उन चीजों की एक मुर्दा नकल है जिन्हें आँखों से देखा जा सकता है, परन्तु चित्रकला चलते-फिरते विचारों की रूप-रेखा है। एक फोटोग्राफर उन्हीं चीजों की छाया उतार सकता है जिन्हें अपनी आँखों से देख सकता है; परन्तु सच्चा चित्रकार वह है जो विचारों की तस्वीर खींचता है। वे विचार जिनकी कोई मूर्ति नहीं है, सिर्फ चित्र-कार की कूची से ही जैसे अवतार बन कर आँखों के सामने आते हैं और तब हम देखते हैं कि उसमें अमूर्त को मूर्त बनाने का गुण है, जो केवल ईश्वर में है।

मिस्टर भरूँचा जोश मे आकर ये बातें कह रहे थे। उनके हाथ मे चाय का प्याला था। बीच-बीच में वह उसकी चुस्की भी लेते जाते थे। अपनी बात पूरी करके उन्होने गर्म-गर्म चाय

की दो-तीन घूंट गले के नीचे उतारी और चश्मे से घूर-घूर कर मिस्टर वेदवार की ओर देखने लगे।

मिस्टर वेदवार सुन रहे थे और मुस्करा रहे थे। असल बात यह थी कि एक बार उन्होंने मिस्टर भरूँचा की तस्वीर उतारने से इन्कार कर दिया था। इन्कार भी ऐसा वैसा नहीं, यह कह कर इन्कार किया था कि आप तस्वीर उतारने के काबिल ही नहीं हैं। वास्तव में मिस्टर वेदवार कुछ पेशेवर फोटोग्राफर तो थे नही। घर के रईस थे। फोटोग्राफी वे सिर्फ शौकिया करते थे। इसकी उन्हें सनक थी। इस सनक के पीछे उन्होंने दो-तीन लाख रुपया फूक किया था। इटली, जर्मनी, जापान, रूस और न जाने कहाँ-कहाँ की खाक छान आये थे। फोटोग्राफी के मामले में वे अब एक प्रमाण माने जाते थे। उन जैसा फोटोग्राफ़र उन दिनों बम्बई शहर में न था। मगर उनकी सनक में एक लहर होती थी। प्रायः वे पुरुषों के फ़ोटो तो यह कहकर खींचने से इन्कार कर दिया करते थे कि पुरुष सोचने-विचारने और काम करने का जानवर है फ़ोटो उतरवाने का नहीं। स्त्रियों की वह लता से उपमा दिया करते थे। उनका कहना था, जैसे लता बिना सहारे खड़ी नहीं हो सकती, जैसे लता में—कोमलता, मरोड़, मृदुल-माधुर्य और शोभा है, वैसी ही स्त्रियों में है। इसी से वे स्त्रियों का फ़ोटो सीधी खड़ी करके नही लेते थे, खास-खास पोज़ लेते थे। यद्यपि वे बहुत ऊँचे दर्जे के फ़ोटोग्राफर थे, फिर भी स्त्री-पुरुष दोनों ही उनसे फ़ोटो उतरवाने में घबराते थे। रुपया-पैसा तो वे किसी से लेते-देते नहीं थे, पर फ़ोटो उतरवाने वालों को हलाक़ कर डालते थे, मैंने कहा न कि पुरुषों को तो वे देखते ही धता बता देते थे—ख़ास कर उन पुरुषों को जो देखने मे सुडौल और सुन्दर नहीं होते थे। स्त्रियाँ जब उनके पास इस मतलब से

आती तो वे उन्हें बड़ी देर तक घूर-घूर कर ऊपर से नीचे तक देखते, किसी से तो साफ इन्कार कर देते—कोई वजह बताते ही नहीं। किसी की आँख, कान, नाक, कमर, कपड़ा-लत्ता आदि की ऐसी आलोचना करते कि वे बुरा मान कर चिढ़ जातीं और फिर मिस्टर वेदवार से तस्वीर उतरवाने का नाम नही लेती थीं। जिन सौभाग्यशालियों का फ़ोटो लेना वे स्वीकार कर लेते थे, उनकी शामत आ जाती थी, उन्हें वे नचा मारते थे। पहले तो वे उनके कपड़े-लत्तों के कट, रङ्ग-मैच पर बहस करते और उन्हें मजबूर करते कि वे उनकी मर्जी और रुचि के अनुसार ही तैयार करावें, फिर वे बैकग्राउण्ड की तलाश मे उन्हें लिये-लिये जङ्गल-जङ्गल न जाने कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते थे। इतना होने पर लाइट, रुख, बैठने का तरीका आदि सौ झंझट निकाल बैठते थे। ग़रज कोई हिम्मतवर माई का लाल ही उनसे फोटो उतरवाने का साहस कर सकता था। पर जिसका फ़ोटो वे उतार देते थे, वह बम्बई शहर भर मे फैशनेबुल सुन्दरियों की ईर्षा की केन्द्र हो जाती थी। यदि मिस्टर वेदवार अधेड़ उम्र के एक बुजुर्ग और गम्भीर आदमी न होते, तो जिस तरह वे युवती लड़कियों को फोटो के मामले मे नाच-नचाते थे, उसे देख कर लोग कुछ और ही अनुमान करने लगते। मगर ग़नीमत यही थी कि उन पर विश्वास और श्रद्धा सब की थी। लोग कौतूहल से उनकी बातें सुनते थे। कोई उनकी किसी भी बात का बुरा नहीं मानते थे।

मिस्टर भरुँचा एक अजब लमढींक आदमी थे। दोनो गालों की हड्डियाँ उभरी हुई, एक आँख छोटी एक बड़ी, खिचड़ी व मोटे-मोटे सूअर के-से बाल, बेतरतीबी से छितराई हुई मूँछें, ढीला और लापरवाही से बदन पर डाला हुआ सूट। अब कहिए उनकी तस्वीर मिस्टर वेदवार खींच कैसे सकते थे? सो उन्होंने उनसे साफ

कह दिया— 'जाइए-जाइए, लड़कों को फिलॉसफी पढ़ाइये और बीबी के हाथ पर हर महीने पॉच-सौ रुपये गिन दिया कीजिये, उन लोगों की नजर में और जॅच जायॅगे। मगर आप फोटो खिचवाने की हिमाकत कीजिए। इससे कला दूषित हो जायगी।' और सुनिए, यह बात भी उन्होंने कही चार दोस्तो मे, जिससे मिस्टर भरूंचा का खूब ही मजाक उड़ा, सो इस बार उन पर वार करके उन्होंने कसर पूरी कर ली।

डॉक्टर गोयल भी मिस्टर वेदवार से खार खाये बैठे थे, बोल उठे—'अब आप कहिये क्या कहते हैं? मै समझता हूँ प्रोफेसर साहब की बात मे एक गहरी सचाई है।'

मिस्टर वेदवार ने सिगार में एक गहरा कश लगाया। धुँए का बादल ऊँचा मुँह कर के छोड़ा। फिर कहा—'मुश्किल क्या है, कैमरे से भी उसी प्रकार विचारों की तस्वीर खींची जा सकती है, जिस प्रकार कोई चित्रकार कूँची से खींचता है। वास्तव मे कैमरा और कूँची दोनों ही तो एक साधन मात्र हैं, तस्वीर तो कलाकार का दिमाग ही खींचता है?'

सर फाज़ल-भाई जरा चैतन्य हो कर बोले—'तो आपका यह मतलब है कि आप ख़यालात की तस्वीर खीच सकते हैं?'

'जरूर, यदि मुनासिब दाम मिले। मिस्टर वेदवार ने इस तरह मुस्कुरा कर यह जवाब दिया कि सर फाज़लभ-ाई एकदम उत्तेजित होकर बोले—'यदि आप मेरे एक शेर का फ़ोटो खींच सके तो मै आप को मुॅह मॉगा दाम दूॅगा।'

मिस्टर वेदवार ने हाथ का सिगार फेक दिया,जेब से पॉकेट-बुक निकाल कर कहा—'बहुत अच्छा, आप यही बात इस नोट बुक मे लिख दे और वह शेर भी।'

सर फ़ाज़ल-भाई ने तैस मे आकर वादा भी लिख दिया और वह शेर भी। मिस्टर वेद्वार ने एक सरसरी नज़र उस पर डाली, मुस्कराये, पॉकेट-बुक जेब मे डाल कर कहा—"बहुत अच्छा, छ: महीने मे आपको तस्वीर मिलेगी।'

'बहुत अच्छा, मै कयामत तक इन्ज़ार करूंगा।'

सब लोग हँस पड़े, सिर्फ़ मि० वेद्वार नहीं हँसे। सभी मित्र चाय-पान खतम कर बिदा हुए।

[२]

वह शेर औरङ्गज़ेब की बेटी ज़ेबुन्निसाँ का एक प्रसिद्ध फारसी शेर था। वह शेर फ़व्वारे के उछलते हुये जल को लक्ष्य कर पढ़ा गया था। उसका अभिप्राय यह था.—

'तेरी भौंहों मे बल पड़े हुये हैं, तू गुस्से से ताव-पेच खाकर ऊपर उठता है, और पत्थर पर सिर दे-दे मारता है, तेरे दिल मे ऐसा क्या दर्द है, तेरी प्रकृति ठण्डी है और स्वभाव शान्त।'

इस शेर की तस्वीर खींचने के इरादे से मिस्टर वेद्वार ने बम्बई से पञ्जाब और काश्मीर तक की यात्रा करने की ठानी। वे दिल्ली-पञ्जाब घूमते हुये काश्मीर पहुंचे। शालामार बाग़ मे अब वे चक्कर काटने और वही शेर गुन-गुनाने लगे। सामने सङ्गमर्मर के फ़व्वारे चल रहे थे। स्वच्छ सङ्ग-मर्मर की चौकियाँ पड़ी थीं। चांदनी रात थी। एक चौकी पर एक फव्वारे के सामने बैठ कर वे सोचने लगे—ऐसी ही सुहावनी चॉदनी रात होगी, ऐसी ही ठण्डी हवा चल रही होगी, ऐसा ही यह फव्वारा जल बखेर रहा होगा—देखो तो फ़व्वारे का पानी कैसा ताव-पेच खाकर ऊपर उछल रहा है, कैसे इसके माथे में बल पड़े हुये हैं। और किस तरह यह पत्थर पर सर पटक रहा है। अपने प्यारे के वियोग में जलती-भुनती भग्नहृदया ज़ेबुन्निसॉ ने यहीं, इसी पटिया पर

बैठ कर अपने दिल के दर्द से इन पानी की धार के दर्द की कल्पना की होगी। कदाचित् शाहजादी भी पत्थर पर सर दे मारना चाहती हो।

इन्हीं विचारो मे मिस्टर वेद्वार उस फव्वारे को देखते रहे। कई बार देखा और अन्त मे एक विचार उन्होंने तय किया। अब एक जेबुन्निसाँ की मूर्ति तलाश की जाय, उसे इसी चौकी पर बैठाया जाय और उसके मस्तिष्क मे यही विचार उत्पन्न किया जाय और तब उसका एक फोटो ले लिया जाय।

अब मिस्टर वेद्वार अपनी ढीली-ढाली पतलून में हाथ डाले, रूप के बाजार की सैर को निकले, काश्मीर भर की सुन्दरियाँ देख डालीं, मगर जेबुन्निसाँ की आकृति की कोई लड़की उन्हे न मिली। वे हताश हो लाहौर आये। वहाँ भी घूमते रहे, तस्वीर खींचने से निराश हो रहे थे। एक दिन शाम को उन्होंने एक युवती को मोटर से उतर कर एक दुकान मे घुसते देखा। देखते ही उछल पड़े। वैसी ही नाक वैसी तीखी-आँखे, चौड़ा माथा, लम्बी गर्दन हू-ब-हू जैसे शाहजादी जेबुन्निसाँ हो, वे खुशी-खुशी दूकान में घुस गये। घूर-घूर कर ऊपर से नीचे तक युवती को देखने लगे। भीड़-भाड़ में किसी ने उनकी बेहूदगी पर गौर नहीं किया। युवती जब सौदा खरीद कर चली तो आप भी टेक्सी लेकर पीछे-पीछे चल दिये। और जब वह अपने बगले मे चली गई, तो आपने पता लगाया कि वह कोई सेशन जज हैं, जिनका यह बँगला है, उन्हीं की वह पुत्री है।

आपने खट् से अपना कार्ड जज साहब को भेज दिया। मिलने पर आपने संक्षेप में अपना परिचय देकर कहा—'कृपा कर आप अपनी पुत्री का एक फोटो खींच लेने की आज्ञा दे दीजिये।' जज साहब बहुत भड़के-भन्नाये; परन्तु वेद्वार साहब

भला कहाँ छोड़ने वाले थे, जब बड़ी-बड़ी सिफारिशें और परिचय-पत्र उन तक पहुँचे। और मिस्टर वेदवार की आयु, सौजन्य सनक और उद्देश उन्हें मालूम होगया तो वे उनके दोस्त हो गये और इस शर्त पर राजी हो गये कि फोटो हमारे ही सामने खींचा जायगा।

जब जज साहब राजी हो गये तब मिस्टर वेदवार ने यह पख लगाई कि फोटो यहां नहीं, शालामार बाग़ में खींचा जायगा। जज साहब किसी तरह राज़ी न होते थे, पर अन्त में जब सब खर्च का भार मिस्टर वेदवार ने लिया तो राज़ी हो गये। एक महीने की छुट्टी ली, और पूरी पार्टी काश्मीर जा पहुंची।

ज़ेबुन्निसाँ के उपयुक्त पोशाक और ज़ेवर तैयार कराने में, लड़की के मस्तिष्क में, वही भाव भरने में मिस्टर वेदवार को कई दिन लग गये। रुपया भी बहुत खर्च हो गया। परन्तु इसकी उन्हें परवाह न थी, किसी भांति तस्वीर खिच जाय। जज साहब को भी अब उनकी सनक में मज़ा आने लगा था। और लड़की भी रस लेने लगी थी। इससे मिस्टर वेदवार की कठिनाइयां कुछ हल्की हो गई थी।

सब तैयारी कर चुकने पर अन्त में एक दिन फोटो खींचने का इरादा पक्का कर सब लोग शालामार बाग़ पहुँचे। जज साहब ने देखा, काफी रुपया ख़र्च करके वेदवार ने वहां आवश्यक परिवर्तन किये हैं। ऐसा मालूम होता था, शाहज़ादी ज़ेबुन्निसां, इसी बाग़ में आजकल रह रही हैं।

परन्तु जब फोटो लेने का समय आया और सब तैयारियां होगईं तो फोकस लेने के बाद मिस्टर वेदवार ने उदास होकर कहा—'अफसोस है, आज फोटो नहीं खिच सकता।'

जज साहब बौखला उठे। उनकी छुट्टियों के बहुत कम दिन रह गये थे। बोले—'अब क्या हुआ ?'

मिस्टर वेदवार ने समझाया। फोटो उस समय लिया जायगा जब सूरज के नीचे एक बादल का टुकड़ा होगा। हमें यहां रोज़ आना होगा, उसकी प्रतीक्षा करनी होगी। बिना ऐसा हुए चांदनी रात का लाइट-शेड चित्र मे नही आ सकता, और कृत्रिम बन्दोबस्त भी नहीं किया जा सकता।

जज साहब बहुत चीखे-चिल्लाये। पर मिस्टर वेदवार की बेबसी, विनय और इतने दिन की मुरव्वत ने आख़िर उन्हें पिघला दिया। वे मिस्टर वेदवार के पीछे खूब ही नाचे और अन्त मे एक दिन ठीक फोटो खिच गया। फोटो देख कर मिस्टर वेदवार आनन्द से विह्वल हो गये। वे दौड़े दौडे गये और जज साहब के गले से लिपट गये। चित्र क्या था मानो स्वयं शाहज़ादी जेबुन्निसां चॉदनी रात मे अपने उदास और एकाकी जीवन के लिए फव्वारे के सामने बैठी उसके प्रति संवेदना प्रकट कर रही हैं। और वह शेर जैसे अनायास ही उनके मुँह से निकल पड़ा है।

(३)

बम्बई पहुंच कर चित्र मित्र-मण्डली के सामने सर फाज़ल-भाई को दिया गया। बम्बई के सब कलाकार बुलाये गये। सबने मुक्त-कण्ठ से चित्र की प्रसंसा की। जब सर फाज़ल-भाई ने उसका मूल्य पूछा तो मिस्टर वेदवार एक ठण्डी सांस लेकर बोले—'वादा कर चुका हूं, इसलिए देना पड़ा। इस चित्र का कोई मूल्य नहीं है। छत्तीस हज़ार रुपया मेरा जो इसके बनाने मे खर्च हुआ है, दे दीजिये।'

———

तेरह बरस बाद

आम कहावत है कि दूसरी पत्नी पति को अधिक प्यारी होती है। कदाचित् इसलिये कि उसमें उल्लास और वेदना एक ही लक्ष्य-बिंदु पर संघात खाती है। पति की गदह-पचीसी रफ़ूचक्कर हो जाती है। जीवन की एक असाधारण ठोकर उसे कल्पना, स्वप्न और बाहरी रंगों की दुनिया से उठाकर भीतरी जगत् के सत्यालोक में पहुंचा देती है। वह पत्नी को प्रेयसी समझने की शायद बेवकूफ़ी फिर नहीं कर सकता। जीवन-संगिनी का सच्चा अर्थ टीका और भाष्य-सहित उसकी समझ में आ जाता है। खटपट, मान व्याज-कोप, ऊधम और तमाम चंचल वृत्तियों के प्रोग्राम स्थागित हो जाते हैं, और वह सावधान, गंभीर, स्थिर, केंद्रित और उत्तरदायित्व-पूर्ण हो जाता है।

परंतु संगीत में एक साथ मिलकर बजने वाले विविध वाद्य जब तक एक सम पर आकर संघात नहीं खाते, तब तक संगीत का समा नहीं बँधता। सितार और सारंगी, तबला और हारमोनियम, सब के ठाठ जुदा तो हैं, पर उन्हें स्वर-लहरी और ताल के साथ विवस होकर मिलकर ही चलना पड़ेगा, तभी तो रसोदय

होगा। ठीक उसी प्रकार दांपत्य में भी रसोदय तो तभी होता है, जब पति-पत्नी जीवन की प्रत्येक सूक्ष्म और स्थूल क्रियाओं में एकीभूत हों, प्रत्येक सम पर दोनों अभिन्न हो जायँ—सुर से भी और ताल से भी।

उदय और अमला पति-पत्नी थे। जीवन की संगीत-लहरी दोनोंकी हृदय-वीणा के तारों को प्रकंपित करती थी, परंतु सम पर आकर दोनो बेसुरे हो जाते थे। ताल-सुर का मेल नहीं खाता था। इससे, सब कुछ ठीक होने पर भी, उस छोटे-से दांपत्य-संगीत में रसोदय नहीं हो पाता था। क्यों? सो कहता हूँ। उदय की आयु ३२ साल की थी, और अमला की १८ वर्ष। अमला से उदय का ब्याह हुए केवल १॥ वर्ष बीता था। अमला उदय की दूसरी पत्नी थी।

२८ साल की आयु मे उदय की प्रथम पत्नी का अकस्मात् देहांत हुआ। प्रेमोन्माद की मूर्च्छितावस्था मे ही जैसे किसी ने उसका सब कुछ अपहरण कर लिया हो। पत्नी की मृत्यु के बाद तुरत ही वह उन्माद उतर गया, और फिर उसने अपने संसार को छिन्न-भिन्न दुर्गम और असह्य पाया। अकस्मात् और असमय की मनोवेदना उसका अदीर्घदर्शी जीवन न सह सका, वह वेदना मे विकल हो हाहाकार करने लगा। परंतु जगत् मे अंधकार हो या उजाला, उसमें जितनी भी चीजें हैं, वे तो रहती ही हैं। अमला भी जगत् में थी, वह अदृष्ट-बल से उदय से आ टकराई। और, जब दोनों पति-पत्नी हुए, तो हठात् जीवन की सारी ही विचार-धारा बदल गई। वह भी केवल उदय ही की नहीं, अमला की भी।

अमला सोचती थी, पति एक प्रतिमा है; उसमें बहुत-से रंग भरे हुये हैं। वह एक भूला है; अमला जब उसे प्राप्त करेगी,

वह उसके सहारे लटक जायगी। अपनी यौवन-भरी ठोकर आघात से पैंग ले-ले झूलेगी। आशा के हरे-भरे सावन में प्रे की रिमझिम वर्षा होगी; वह झूलेगी, गावेगी, हँसेगी और विह करेगी। वह एक बार अपने यौवन, जीवन और स्त्रीत्व को प के अर्पण करेगी। और, वह उसे अपने पौरुष, दर्प, प्रेम औ आत्मार्पण में लीन करके उसके नारीत्व को सार्थक करेगा।

ये सब बातें अमला ठीक इसी भाँति सोचती हो, सो नही ये तो बड़ी गहरी बातें हैं। अमला तो जैसे जीवन-पथ पर उछलती चलती थी, वह तो इन सब बातों को ऊपर-ही-ऊपर सोचती थी। जैसे भूखा आदमी भूख तो अनुभव करता है, पर उसके शरीर में जो भीतर उद्वेग पैदा होता है, जिसके कारण भूख लगती है, उसे नहीं समझता, उसी तरह अमला अपने मन की उस उमग को तो समझती थी, जो उसके यौवन के प्रभात में पति के संस्मरण से तरंगित होती थी, परतु उसके मूल-कारण को नही।

[२]

विवाह के बाद अमला जब ससुराल आई, तो उसे ऐसा मालूम हुआ कि जिस वस्तु के संस्मरण से उसके मन में इतनी उमंगे उठती थी, वह कुछ उतनी प्रिय, आकर्षक और उसके उतनी निकट नहीं है, जितनी उसे होना चाहिए था। वह क्षण-भर ही में अपने को उस अपरिचित घर में कुछ अपरिचित-सी देखने लगी। पति को देखकर वह कुछ सहम-सी गई। उसने देखा, वह कुछ उल्लसित नहीं हैं। अमला की चचलता और उमंग को उद्रेक करने की उनकी कुछ भी चेष्टा नहीं है उनकी आँखों में प्यार की वह छलछलाती चमक नहीं। उनमें एक रूखी विचार-धारा-सी, एक विस्मृति-सी है। जैसे अमला को हिफ़ाज़त से अपने घर में धरकर वह कुछ निश्चित-से हो गए हैं।

रह-रहकर अमला के मन में यह होता था कि वह उसके पति नहीं हैं। पति का नाम मन में उदय होते ही जो रोमांचकारी परिवर्तन उसके शरीर में होता था, वह उन्हें देखकर नही होता था।

घर मे और भी औरतें थीं। दो ननँदे थीं—एक विधवा, एक कुआरी। एक जिठानी थी, एक सास। इन के सिवा कुछ दिन तो पास-पड़ोसिनों का ताँता बँधा रहा। उन सब ने बारीक नज़र से अमला को देखा, जैसे कोई भूली चीज़ पहचानी जा रही हो—चोरी के माल की शिनाख्त हो रही हो। अमला को यह सब बहुत बुरा लगा। उसे देख-देख कर जो औरते चुपचाप संकेत का एकाध वाक्य कहती थी, पास-पड़ोसिनें उसकी सास को जिन शब्दों में बधाई देती थीं, उन सबसे तो खीझकर अमला रोने लगी। उसने सोचा, जैसे मैं मोल खरीदा वर्तन हूँ, हर कोई ठोक-बजाकर देखता है कि ठीक है या नही? तब इस सब अप्रिय वातावरण में एक प्रिय वस्तु थी, वह उसकी कुमारी छोटी ननँद कुंद। वही सब से पहले पालकी में अमला के पास घुस बैठी थी। वही अमला का घूँघट हटाकर हँसी थी। वही उसका आँचल पकड़ घर मे खींच लाई थी। वही दिन-भर अमला के पास रह-कर पल-पल में उसे खाने-पीने, सोने-बैठने को पूछ रही थी। वह एक प्यारी-सी तितली थी। अमला ने देखा, जैसे वह कुछ उसी का ज़रा गोरा एक संस्करण है। अभी दो दिन पहले पिता के घर में अमला ऐसी ही तो थी। जो हो, अमला की सबसे प्रथम घनिष्ठता कुँद से हुई। कुंद का आसरा लेकर अमला उस घर मे रहने लगी। धीरे-धीरे सब कुछ सात्म्य हो गया। सब कुछ सम हो गया। अमला ने सास की सुजन मूर्ति को समझ लिया, पति के सौजन्य को भी जान लिया। पति-पत्नी आशातीत ढग से झटपट ही पुराने होने लगे। उनके जीवन मे गदह-पचीसी के

विनोद, भूलें, मान-मनौवल, रूठना, विवाद बहुत कम आते। अमला ने पति के शुद्ध, गंभीर प्रेम को पहचान लिया। पति को देखकर लाज से सिकुड़ना झटपट ही समाप्त हो गया। हास-विनोद का अध्याय बहुत कम पढ़ा गया। वह जैसे कुछ महीनों में ही गृहिणी बन गई। अब वह पति को देखते ही उनकी आवश्यकताओं का ध्यान करने लगी। वह दिन-भर खटपट में लगी रहती। बातचीत जब दोनों की होती, किसी-न-किसी कार्य-वश।

जैसे पाल में झटपट पकाए फलों का स्वाद डाल से-टूटे ताज़े फलों-जैसा न होकर कुछ कृत्रिमसा होता है, वैसे ही असमय में इस पति-पत्नी की दायित्व-पूर्ण घनिष्ठता ने अमला को अस्वाभाविक गंभीर और अपनी समस्त आयु और स्थिति से कहीं बहुत अधिक कृत्रिम बना दिया। इसका सबसे बड़ा असर अमला ही पर पड़ा। उसके शरीर और मन, दोनों ही का विकास रुक गया। पति के घर में रहने को, उसे अपना मानने को जैसे, उसे विवश किया गया हो। वहाँ की दीवारें, कमरे, सामान, बिछौने, कपड़े, सभी कुछ अपरिचित-से उसे प्रतीत होने लगे। सास, ससुर, देवर और पति भी जैसे उसे कर्तव्य-वश अपने समझने पड़े।

उदय की परिस्थिति कुछ और ही थी। जैसे फाँसी की आज्ञा पाने पर कोई अपील में छूट जाय, ठीक उसी भाँति अमला को फिर से पत्नी-रूप में पाकर वह केवल संतोष की एक गहरी साँस ले सके थे। अमला के प्रारंभिक उल्लास और नवीन जीवन की ओर उन्होंने दृष्टि-पात ही नहीं किया। और, इसी से, बिना खाद-पानी के पौदे की भाँति, वह मुर्झाकर सूख भी गया। परन्तु उदय के लिये मानो सब एकरस था। अमला की यह परिवर्तित, फीकी मनोवृत्ति जैसे उनके लिये सात्म्य हो गई थी। फिर भी अमला के प्रति एक उत्सुकता, प्रेम और सहानुभूतिमयी भावना

उदय के मन मे थीं। अमला को किसी भाँति की कोई तकलीफ न रहने पावे, इस संबध में उदय खूब ही सचेष्ट थे।

विवाह के डेढ़ वर्ष वाद अमला ने एक पुत्री प्रसव की। कन्या अतीव सुँदरी, सुमुखी और आकर्षक थी। उसके जन्म से अमला और उदय दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए। यह नन्ही-सी बच्ची अपने छोटे-से दूध के समान स्वच्छ पालने पर पड़ी चुपचाप अँगूठा चूसती, छू देने से हँसती, और पास जाने पर निर्मल नेत्रों से देखती रहती। वह अपनी अज्ञात भाषा मे अपने पास आनेवालों से कुछ बातचीत भी किया करती। देखते-देखते वह बड़ी होने लगी।

नन्ही की पहली वर्ष-गाँठ का दिन था। उदय उन आदमियो मे न थे, जो कन्या जन्म को पुत्र-जन्म से कम समझते हैं। उन्होंने बड़ी धूम-धाम से उसकी प्रथम वर्ष-गाँठ मनाई। मित्रों और परिजनों से घर भर गया। भाँति-भाँति के भोजनों और मनोविनोद के सामानों से आगंतुकों का स्वागत किया गया। अपनी-अपनी भेंट और बच्ची हो आशीर्वाद देकर जब मेहमान बिदा हो गए, तो उदय बहुत-सी सटर-पटर चीजे नन्ही के लिए ख़रीदकर, हँसते हुए, घर आए। उनकी आँखों में हँसी थी, और दिल में चुहल। अमला के नव-वधू होकर घर आने पर भी वह चुहल उदय के मन मे नहीं उदय हुई थी। अमला उन उल्लास-युक्त आँखों को देखती ही रह गई। परन्तु उदय की दृष्टि अमला की ओर नहीं थी। वह नन्ही की ओर उत्साह से देख रहे थे। अकस्मात् नन्ही के सिरहाने रक्खी एक गुड़िया पर उनकी दृष्टि पड़ी। वह भौंचक-से उस गुड़िया की ओर एकटक कुछ देर देखते उस गुड़िया की ओर पागल की तरह ताकते देख अमला से न रहा गया। उसने पूछा—"इसे इस तरह क्यों तक रहे हो?"

"यह गुड़िया यहाँ आई कहाँ से ?"

"कहीं से आई, तुम्हें मतलब ?"

"मतलब बहुत है। इस गुड़िया को मैं पहचानता हूँ।"

"तुम ?"

"हाँ, यही वह गुड़िया है। तुम्हारे पास कहाँ से आई ?"

"मेरे पास यह बहुत दिन से है।"

"कितने दिन से ?"

"जब मैं बहुत नन्ही थी, तब से।"

"कहाँ से आई ?"

"एक बहुत अच्छे आदमी थे, उन्होंने दी थी।"

"तुम्हें दी थी—अमला ? तुम क्या कह रही हो ?"

"मुझे याद है, उन दिनों मैं बहुत छोटी थी।"

"तुम ?"

"हाँ, वह मुझे गोद में खिलाते थे। पेट पर उछालते थे। मेला दिखाने ले जाते थे। अंधा घोड़ा बनते थे। वह बहुत अच्छे थे ?"

"अमला!" उदय उन्मत्त हो रहे थे, उन्होंने कहा—"कहाँ की बात है यह ?"

"मेरे नाना के घर की।"

"तुम्हारे पिता तो लाहौर में हैं ?"

"पर मैं बचपन में नाना के घर बहुत दिन रही थी--वह इंजीनियर थे, और जंगल में नहर पर रहते थे।"

"अमला, तुम मुझे पागल कर दोगी। तो वह अच्छे आदमी कौन थे ?"

"यह याद नहीं। नाना के पास आते थे। मेरे लिये मिठाई लाते थे। एक दिन वह यह गुड़िया लाये थे, फिर नहीं आए। मैं पिताजी के यहाँ चली आई।"

"ओह, वह नन्ही-सी नटखट लड़की तुम हो अमला! तब तो तुम बहुत ही हँसती थीं। उन्होंने अमला के दोनो हाथ पकड़कर पास खींच लिया।"

अमला अचरज-भरी दृष्टि से देखने लगी। उदय ने कहा—"उन अच्छे आदमी को तुमने कभी याद नहीं किया अमला?" अमला कुछ-कुछ समझ गई थी। वह आँखे फाड़-फाड़कर पति की आँखों में छिपी उस विस्मृत, चिर-परिचित दृष्टि को पहचानने की चेष्टा कर रही थी। उसने प्रकंपित स्वर मे कहा—"तो क्या सचमुच.. "

"अमला, तुमने तो खूब ढूँढ़ लिया मैं सोचता रहता था कि वह बालिका भी अब बड़ी हो गई होगी, अपने घर-बार की होगी। सो तुम बड़ी हो गईं। अपने घर-बार की हो गईं। तुम्हारे खेलने की यह सजीव गुड़िया तुम्हें मिल गई, सो तुमने अपनी बचपन की गुड़िया इसे दे डाली।"

दोनो चुपचाप कुछ देर अवसन्न खड़े रहे। तेरह बरस पूर्व की विस्मृत-सी बातें वे खूब ध्यान से याद कर रहे थे। उदय सोच रहे थे, कैसी विचित्र बात है कि जिस बालिका को मैंने घुटनों पर खिलाया, वही अब मेरी अर्धाङ्गिनी और जीवनसंगिनी है। अमला सोच रही थी, वाह! यह तो खूब रही। जब मैं नन्ही-सी बच्ची थी, तब यह इतने बड़े थे, अब मैं इनके बराबर हो गई।

समय और परिस्थिति ने क्या घटना उपस्थित कर दी! दोनो सोचने लगे। दोनो की दृष्टि उस बालिका पर पड़ी, जो पालने में अँगूठा चूस रही थी। एक बार दोनो ने एक दूसरे को देखा, और फिर हँस दिए।

इस बार फिर दोनो भली भांति एक हुए। न मालूम क्यों? समाज और धर्म के विधान पति-पत्नी होने पर भी उन्हें उतना निकट न ला सके थे, जितना वे अब मधुर, किंतु विस्मृत और असम बाल्य-स्मृति से निकट आ गए।

जापानी दासी

यह घटना सन् १९१७ की है। यूरोप का घनघोर महायुद्ध चल रहा था। सारे संसार पर लोहू और लोहे का रंग चढ़ा हुआ था। जर्मनी का आतंक मित्र राष्ट्रों की नींद हराम किए था। उस समय जापान पर मित्र राष्ट्रों के, खासकर अंग्रेजों के, प्राण आ अटके थे। ग्रेट-ब्रिटेन, जो मित्र-राष्ट्रों का केन्द्र था, जापान की करुणाकोर का दीन भिखारी था। जापान के भ्रू-भंग होते ही एशिया से ब्रिटेन का नाम-निशान मिट सकता था।

जापान ने अपना महत्त्व समझ लिया था। जापान का टापू जैसा क्षुद्र और महासमुद्रों की जल राशि में मग्न एक नगण्य भूमि-खंड है, वैसे ही जापान के निवासी भी नाटे-ठिगने और पीत वर्ण होते हैं। वे इस समय लोहे के फौलादी आदमियों की भांति पृथ्वी-भर में अपने व्यापार साम्राज्य का विस्तार करने पर तुले थे। उनके चारों ओर चांदी थी। अमेरिका, योरोप, एशिया और अफ्रीका, सभी तरफ के कला-कौशल व्यापार भग थे। यातायात आतंक पूर्ण था। समुद्रीय-मार्ग में टारपीडो और विध्वसकों का जाल बिछा था। इस जाल को भेदन करके किसी भी शत्रु-मित्र

के पोत का बच निकलना संभव न था। समुद्र में मानों आग लग रही थी। योरोप ने महामद्य पिया था, वह मतवाले की भांति अपना ही रक्त पी रहा था। सुदूर पूर्व की मुर्दार और निस्तेज जातियां भय, शंका और चिन्ता से भरी हुई मत्त योरोप का यह रण-तांडव देख रहीं थी।

व्यापार ही इस युद्ध का प्राण है, व्यापार ही इसका मूल कारण है, यह जापान समझ गया था। वह छोटी-सी पीली जाति, पौनिया नाग की भांति लहरा लहरा कर, इस सुयोग से लाभ उठा कर अपने उन्मुक्त व्यापार के लिये विश्वव्यापी द्वार का उद्‌घाटन कर रही थी। महान रण-पंडित और कट्टर राजनीतिज्ञ लायड जार्ज—जो उस समय मित्र राष्ट्रों के भाग्य-विधाता थे, जापान को अपना परम मित्र घोषित कर रहे थे। वह समझ गये थे, इसी मित्र की बदौलत, इस कठिन समय मे, एशिया मे ब्रिटिश तलवार का आतंक कायम रक्खा जा सकता है।

(२)

राजधानी टोकियो मे लाखों मनुष्य पागल कुत्ते की भांति दिन भर और आधी रात तक दौड़ते रहते थे। साधारण कुली से बड़े-बडे व्यापारियों तक की यह हालत थी। लोगों को घरों पर जाकर खाने की फुरसत न थी। रुपये का मेह बरस रहा था, किसी चीज़ की मानो कोई दर ही न थी। मिट्टी सोने के मोल बिक रही थी। उस समय जापान सिर्फ एक दूकान थी। और सारा ससार इसका खरीदार था। भोजन के समय होटलों मे भीड़ देखने योग्य होती, पर प्रबन्ध और व्यवस्था भी देखने योग्य थी। सभी की सभी इच्छाए पूर्ण होती थीं।

जापान मे रहते मुझे बीस वर्ष होगये थे। मै जापान की नस-नस से वाकिफ था। मेरे जीवन का मुख्य भाग जापान में

व्यतीत हुआ था। जापान ही मेरा घर था। मैं अविवाहित ही रहा। घर से दरिद्रदेव की लात खाकर बचपन ही में भाग निकला था। यहां विदेश में लक्ष्मी की ठोकरें खाने से इतनी फ़ुरसत न मिलती थी कि देश जाकर किसी कन्या-भार-ग्रस्त पिता का कुछ उपकार सकूं। विदेशी रमणी को पत्नी बनाना ठीक नहीं समझा। जवानी की आंधी आई, और वासना के टिम-टिमाते स्नेह-हीन दीपक को एक ही झोंके से बुझाकर चल दी। जीवन अन्तिम रात्रि के शांति वातावरण की भांति बीत रहा था, मन और इन्द्रियों की चंचलता धीमी पड़ गई थी। हृदय अल-साया पड़ा था।-सब काम आप ही चल रहा था। रुपयों का ढेर छमाछम नाचता हुआ आप ही मेरे ऊपर आ गिरता था, मुझे कुछ भी न करना पड़ता।

मेरे घर में मुझे छोड़ कर मेरी एक दासी है। उसे मैं एक दिन बाजार की एक गली से ले आया था। यह वहाँ उस दिन कुछ रुपया कमाने की इच्छा से अपने यौवन का सौदा सड़क पर बखेरे खड़ी थी। मुझे युवा और सपन्न देख इसने आँखों-ही-आँखों में मुझे अपने सौदे की तरफ अकर्षित किया। मैंने बातें की। और, जाना कि पिता का कर्ज चुकाने को यह कुमारी बालिका आज अपना कौमार्य बेचने आई है। इसका पिता एक किरानी का क्लर्क था। मैं उसके साथ जाकर उससे मिला। कुल सौ येन की उसे जरूरत थी, वह मैंने उसे देदिए, और सौ येन वार्षिक वृति पर मैंने उसे नौकर रख लिया। यह आज से ३ साल पूर्व की बात है। तब से दिन रात मेरे घर रहती है। घर का सब काम करती, भोजन बनाती, सफाई करती, कपड़े धोती और मेरी सब वस्तुओं को सँभालती है। मैं यह भूल गया हूँ कि वह मेरी दासी है।

इस बीच में मैंने उसे कभी विनय-हीन नहीं देखा। वह सदा हँसती है। अपने काम मे उसने कभी प्रमाद नहीं किया। वह बिजली की भांति फुर्तीली है। उसने कभी मुझे असतुष्ट नहीं किया। वह मुझे स्वामी कहकर पुकारती है, और मैं उसे उसका नाम लेकर। कभी-कभी प्यार मे आकर मै उसे 'बिजली' कहता हूँ। बिजली का अर्थ मैंने उसे जापानी भाषा में समझा दिया वह इस हिन्दोस्तानी नाम से बहुत खुश है। जिस दिन मै उसे इस नाम से पुकारता हूँ, वह समझ लेती है, आज मै उस पर बहुत प्रसन्न हूँ। और, वह उस दिन खूब गुन-गुनाकर गाती है, मेरे बिछौने पर नई चादर बिछाती है, तकिए पर सुगंधित सेंट छिड़क देती है, और मै शयन करने जाता हूँ, तब वह द्वार पर खड़ी होकर मधुर हास्य से, धीमे स्वर में, बत्ती बुझा देने की आज्ञा माँगती है। आज्ञा मिलने पर बत्ती बुझाकर, दुःख की हास्य-रेखा की भाँति अपने सोने के कमरे में चली जाती है।

(३)

पंजाब की एक बड़ी फर्म से हमारा व्यापार है। वह फ़र्म रेशम की बड़ी करारी फ़र्म है। महायुद्ध के कारण भारत मे रेशम के व्यापार को चार चाँद लग रहे हैं। माँग के मारे नाक में दम है। सुविधा के ख्याल से इस फ़र्म के एक एजेंट जापान आए। वह पन्द्रह दिन से मेरे घर ठहरे हैं। वह एक ग्रेजुएट हैं। सुन्दर हैं, युवक हैं, अप-टु-डेट हैं। दांत बहुत सुन्दर हैं, बाल और भी साफ। स्त्रियों के बेहद शौकीन हैं। व्यापार की योग्यता तो जो हो, सो ठीक है, स्त्रियों की परख की भारी योग्यता व्यक्त करते हैं। वह आए तो व्यापार करने हैं, हमारा उनका व्यापार-सम्बन्ध है भी, पर वह बाते सदैव स्त्रियों की किया करने हैं। उनके कहने का मतलब यह कि उन्होंने भारतवर्ष मे सुना था कि जापान

में लड़कियाँ सड़कों की धूल में मिली रहती हैं। यदि किसी सड़क से एक मुट्ठी धूल उठा ली जाय, तो दो-चार सुन्दर युवतियाँ उसमे से निकल आना आश्चर्य की बात नहीं। स्त्री-चर्चा मे मेरा निरुत्साह देख कर उन्हे बड़ी निराशा हुई।

मेरी दासी पर उनकी शुभ दृष्टि है, यह मै उनके आने के दो-चार दिन बाद ही समझ गया। परंतु इस संम्बन्ध में कुछ कहना मैंने ठीक न समझा। मुझे विश्वास था कि उन्हें अपने गौरव और दासी को अपनी रक्षा का काफी ख्याल है। दासी को मैंने उनकी सब आवश्यकताएँ पूरी करने की खास आज्ञा दे रक्खी थी। वह बहुत ही तत्परता से उनकी ज़रूरतों को रफा करती थी। वह उनकी बातों को न समझ कर घबरा जाती दी, फिर इशारे से समझाने पर हँस पड़ती थी। उस मधुर हास को बखेर कर जब वह चली जाती, तब यह मेरे नवयुवक मेहमान बटोर कर उसे हृदय म रख लेते थे। कुछ दिन में वह बहुत सा इकट्ठा हो गया। यह तो मैं कह ही चुका कि वह बहुत हँसती थी। अब वह बिखरा हुआ हास्य उनके हृदय में जमा होकर ऊधम मचाने लगा।

(४)

मुझे इन दिनों घर मे रहने की बहुत कम छुट्टी मिलती थी। मुझे प्राय' दिन-दिन-भर और कभी-कभी तमाम रात बाहर रहना पड़ता था। मेरे यह मेहमान अधिकतर घर में पडे रहते। उनका विश्वास था, दौड़-धूप की उन्हें क्या आवश्यकता है, उसके लिये मैं हूं ही। जापान मे आकर घर में पड़ा रहना, दिन में तीन वार मछली, अडा, केक और पुलाव खाना; छः बार चाय पीना, बिजली से दीदार बाजी करना, यही उनकी कर्तव्य-दृष्टि से काफी है।

उस दिन मैं रात को लौट नहीं सकता था। मैंने फोन में इस बात की सूचना बिजली को दे दी थी। मेरे मेहमान को कोई कष्ट न हो, तथा उन्हें खाना खिलाकर सुला दिया जाय, यह भी कह दिया था। आज रात को मैं घर न आ सकूँगा, यह जानकर मेरे मेहमान की धुकधुकी बढ़ गई।

बिजली ने उन्हें सब सूचना दी। वह गरमा-गरम खाना ले आई। खाने के बाद एक कप काफी भी दे गई। इसके बाद ही जब वह उनके शयनगृह के द्वार पर बिजली का बटन पकड़कर खड़ी हुई, और मुस्कराकर बत्ती बुझाने को कहा; तो मेहमान महाशय ने लपककर, उसका हाथ पकड़कर चूम लिया। बिजली कुछ लाज, कुछ आदर से झुकी, शिष्टाचार के खयाल से नाराजी मिश्रित तनिक मुस्कान उसके होठों पर आई। वह बत्ती बुझाकर अपने कमरे में जा सोई।

वह कभी अपना कमरा बंद करके नहीं सोती थी। वह दिन-भर की थकी-माँदी सो रही थी। दूध के फ़ेन के समान उसके बिछौने पर चद्रमा की उज्ज्वल, नीली किरणें पड़ रही थीं। उसके सुनहरे बाल बिखर रहे थे, और अर्ध-नग्न वक्षःस्थल साँस के साथ उठ बैठ रहा था। गर्मी थी, और उसके शरीर पर सोने के समय की हलकी पोशाक थी।

मेरे मनचले युवक मेहमान की आँखों में नींद न थी। बिजली की लहर उनके मन में लहरा रही थी। वह साहस करके उठे। जूता उन्होंने नहीं पहना। वह पंजे के बल ऊपर की मंजिल पर चढ़ गए। उन्हें मालूम था कि वह किस कमरे म सोती है। वहाँ जाकर उन्होंने बिजली का उन्मुक्त सौंदर्य आँख भर देखा। वह मुग्ध होकर देखते रह गये!

उन्होंने और भी साहस किया, वह भीतर घुस गये। द्वार बंद कर दिया, और बिजली के पलंग पर बैठ गए।

आहट पाकर वह उठ बैठी। क्षण-भर ही मे उसने परिस्थिति को समझ लिया। वह उछल कर खड़ी हो गई। उसके खडे होने के वेग और आकस्मिक धक्के को मेरे मेहमान न सहन कर सके, वह औंधे मुँह गिर गए। बिजली ने लपककर बत्ती जला दी।

बिजली के प्रकाश मे वह छाती पर दोनों हाथ धरकर, दीवार से सटकर खड़ी होगई, और क्रोध-भरे नेत्रों से घूर-घूरकर उन्हें देखने लगी। उसके होठ फड़के, उसने घृणा से होठ हिलाए। और उन्हें बाहर निकल जाने का हुक्म दिया। मेहमान महशय वासना के मद्य मे गड़ गये थे। वह निर्लज्ज हँसी हँसते हुए, हाथ फैला कर आगे बढ़े। उन्होंने जेब से नोटा का बंडल निकाल-कर बिजली के आगे डाल दिया।

बिजली ने उसे पैरों तले कुचल डाला, और दाँत पीसकर कहा—"बाहर जाओ, कुत्ता।" वह टूटी-फूटी हिंदी बोल लेती थी। मेहमान महाशय ने धृष्टता पर कमर कसी थी। वह बल-पूर्वक उसे आलिगन करने आगे बढ़े।

बिजली वहाँ से उछली। उसने पास पड़ी एक कुर्सी उनके सिर में दे मारी। उसने खिड़की खोली, बाहर झांका, और कूद गई।

(५)

प्रातःकाल मेरे सेक्रेटरी ने अँधेरे ही मुझे जगाया, और घर पर कुछ दुर्घटना हो गई है—पुलिस घर पर आई है, इसकी सूचना दी। मैने आकर देखा। पुलिस के कमिश्नर बिजली का अंतिम बयान ले रहे हैं। उसकी पसली और रीढ़ की हड्डी चकनाचूर हो गई है। वह बड़े कष्ट से साँस ले रही है। वह

हेर फेर

लाहौर मे स्वदेशी प्रदर्शिनी की बड़ी धूम थी। दिन छिपते ही वजहदार स्त्री-पुरुषों के ठठ-के-ठठ वहाँ जा जुटते थे। इस नुमाइश में उद्योग-धधे, कला-कौशल की कोई ऐसी चीजे नहीं दिखलाई गई थीं, जिससे देश के करोड़ो बेकार युवकों या अभागिनी, असहाय स्त्रियों को कोई पेट भरने का धंधा मिले। इसमे सैकड़ों दुकाने ऐसी थी, जिनपर माँग-पट्टी से चाक-चौबन्द, सूट-बूटधारी युवक सुनहरा चश्मा चढ़ाए अपने दिलचस्प ग्राहकों की आवभगत हँस-हँससर और तीन-तीन बल खाकर, करने को डटे खड़े रहते थे। इनकी ग्राहिकाएँ थीं बहार-दार लेडियाँ, फ़ैशन की पुतलियाँ या मर्दनुमा साहसी युवतियाँ, जिनका फ़िजूलखर्ची एक धंधा ही हो गया है। वे सब एक-से-एक बढ़कर साड़ियाँ पहने, ऊँची एड़ी के जूते कसे, तितलियाँ बनी फिर रही थीं। प्रत्येक दुकान पर इन्हीं के मतलब का ढेरों माल भरा हुआ था। जहाँ खड़ी हो जाती, युवक दूकानदार आँखे बिछाते, मुस्किराहट के जाल फैलाते, बलिहारी जाते और झुक-झुककर जमनास्टिक की-जैसी कसरते करते थे।

इन प्रदर्शिनियों से और कुछ हो चाहे न हो, पर दो काम तो अवश्य हो जाते हैं—एक तो स्त्रियों को फिजूल सामान खरीदने के सबंध में बहुत काफी उत्तेजना मिल जाती है, जो वे सजे-धजे दूकानदारों से दुगने मोल में खरीदती है; दूसरे, यारों को आंखें सेकने का अच्छा स्थान और अवसर मिल जाता है।

शाम होते ही युवकों के झुंड-के-झुंड टोली बाँधकर प्रदर्शिनी में आजाते हैं। बीसवीं सदी मे पंजाब ने जो अल्हड़ बछेड़ियाँ पैदा की हैं, वे किस लापरवाही से अपने मनोरंजक, धारीदार, घुटनों तक लटकते कुर्तों को हवा में फरफराती, सलवार को हिलातीं, दुपट्टी को लापरवाही से हवा से अठखेलियाँ करने का अवसर देती, अपने रूप को रास्ते मे बखेरती फिरती हैं, यह सब देखना इनयुवकों का सांध्य कृत्य होता है।

एक-एक की नख-शिख-आलोचना होती है। किसके आँख, नाक, बाल कैसे हैं? रंग कैसा है? नज़र कैसी? कौन किसकी बहू-बेटी, भतीजी-भांजी है? किसकी तरफ़ गर्दन मरोड़कर देखा? किसने कटाक्ष-पात किया? ये ही महान् विषय इन पढ़े-लिखे सुसभ्य लाहौरी युवकों की चर्चा के विषय होते हैं। वास्तव मे ये प्रदर्शिनियाँ स्वदेशी वस्तुओं की नहीं, प्रत्युत विदेशीनुमा प्यारे स्वदेशी युवक-युवतियों की होती हैं। यही कारण है कि इनमें कोई नवीनता न रहने पर भी, फ़िजूल खर्च होने पर भी शाम से जो भीड़ का जमवट जुटता है, तो आधी रात तक रहता ही है।

(२)

बसंतलाल हृष्ट-पुष्ट जवान थे। आँखों में रस था, और चेहरा दमकता हुआ, जिससे प्रतिभा झलकती थी। काव्य के प्रेमी और सौंदर्य के उपासक। उन्हें प्राकृतिक दृश्य देखने का बड़ा शौक था। काश्मीर, मसूरी, शिमला सब उनका

देखा हुआ था। वह बनारस के निवासी थे, प्रकृत साहित्यिक थे। हिंदी के प्रेमी थे, कवि और लेखक भी। अभी अनुभव और विद्या-प्रौढ़ता न थी, पर कलम में ओज और रस था। उनके यश की चाँदनी धीरे-धीरे हिन्दुस्तान भर मे फैलती जा रही थी। अपने तीन-चार लाहौरी मित्रों के साथ एक दिन बसंतलाल भी प्रदर्शिनी मे गए। वह पूरब के पर्दे के अभ्यस्त थे। पूर्व भारत मे पर्दा उठा है सही, पर उसे पर्दा उठना नही कह सकते। वहां की पर्दे में कुचली हुई, मुर्झाई हुई, पिलपिली, बासी ककड़ी के समान स्त्रियों को उन्होंने महिला रूप मे देखा था। अब जो यहाँ पंजाब मे आए, तो पंजाबी बछेड़ियों को देखकर दंग रह गए! महीन तबियत के आदमी थे, रूप किसी का पसंद न आता था। वह कवित्व की दृष्टि से देखते, एक-आध ऐब दिखलाई ही पड़ जाता। उन्हें यहाँ सब से बुरा तो यह मालूम हुआ कि ये स्वस्थ; सुन्दर, कनक-छरी-सी युवती लड़कियाँ और ललनाएँ किस लापरवाही और फूहड़ ढग से खोमचे वालों के इर्द-गिर्द बैठकर दनादन पत्ते चाट रही हैं। वह पर्दे के पक्षपाती तो नही, पर मर्यादा, सुघराई और शिष्टाचार के हिमायती थे। सोचने लगे, ये हुड़दंगी बछेड़िया हैं या भले घर की लड़कियां? किसी भले आदमी की तनख्वाह तो ये आलू-छोलों की चाट मे ही उड़ा दे सकती हैं।

सब मित्र घूम रहे थे। बातचीत का जोर बँधता ही जाता था। विवाद के मुख्य विषय थे टाकी-फ़िल्म और हिन्दी।

एक मित्र ने कहा—"टाकी फिल्मों का जैसे-जैसे ज्यादा जोर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे देश मे हिन्दी का प्रचार भी खूब बढ़ रहा है। हिन्दी-उर्दू का भेद भी मिटता जा रहा है।"

दूसरे ने कहा—"अब तो ऐसा मालूम हो रहा है कि बहुत

शीघ्र पंजाब में भी हिन्दी-ही-हिन्दी हो जायगी। यहां औरतों ने तो राष्ट्र-भाषा को बहुत कुछ अपना लिया है। सिर्फ़ विलायती सभ्यताप्रेमी मर्द लोगों में ही अभी तक अँगरेज़ी का बोल-बाला है। शायद ये लोग अँगरेज़ी से राष्ट्र-भाषा का काम लेना चाहते हैं। इनकी आँखें कब खुलेंगी?"

शहर में सुलोचना की ताज़ी फिल्म आई थी, यार लोगों ने उसकी भी चर्चा उठा दी। एक मित्र लगे सुलोचना के नख-शिख की आलोचना करने। उस आलोचना में कुछ सौंदर्य-ज्ञान था, कुछ भावुकता, कवित्व और कुछ आवेश। यार लोग सुन रहे थे, हँस रहे थे, फड़क रहे थे। वह मित्र सुलोचना का आपे से बाहर होकर नख-शिख-वर्णन कर रहे थे। एकाएक एक दूसरे मित्र ने कहा—"उस्ताद! इस रूप की प्रदर्शिनी में सुलोचना के जोड़ की कोई चीज़ टटोली जाय।" एक ज़ोर के ठहाके के साथ प्रस्ताव का जोरों से अनुमोदन और समर्थन हुआ। मंडली सुलोचना की एक प्रतिमूर्ति की तलाश में प्रदर्शिनी में घूमने लगी। वे लोग प्रत्येक स्त्री को, युवती को, कुमारी को देखने—अपनी नज़रों में तोलने लगे।

एकाएक वसंतलाल चिल्ला उठे। जिसे देखकर वह चिल्लाए थे, उसने चौंककर उनकी ओर देखा—आँखें चार हुईं, और फिर झुक गईं। मित्रों ने पूछा—"क्या हुआ?" बसंतलाल ने एक युवती की ओर संकेत किया। सचमुच वहाँ ५ साल पहले की सुलोचना खड़ी अपनी माधुरी बखेर रही थी। वही कद, वही रंग-रूप वही सुडौल शरीर, वही रसीली आँखें, वही मुस्किराते हुए होंठ।

युवती की अवस्था १६-२० वर्ष की थी। उसे देखकर मित्र-मंडली स्तंभित रह गई! ऐसा मनोहर रूप, रंग, शरीर सदा देखने को नहीं मिलता। सुंदरी किसी दूकान पर एक ज़री-कोर की

सफेद साड़ी खरीदने मे व्यस्त थी। साथ में माता और एक नौकर था। मित्रों की पार्टी दूर ही से इस रूप-सरिता का रस-पान करने लगी। बसंतलाल के हृदय के किसी अज्ञात स्थल पर एक नवीन वेदना उत्पन्न हुई। वह विकल होकर और भी गंभीरता से उसे देखने लगे। कुछ ही देर यह मूक, किंतु चचल अभिनय हुआ होगा कि किसी ने पीछे से बसंतलाल के कंधे को छुआ। देखा, उनके चिरपरिचित पंडित धरानन्द हैं। दोनों मित्र मिले। कुशल-प्रश्न के बाद पडितजी का ध्यान उस परिवार की ओर गया, जिस पर मित्र-मडली के नेत्र भ्रमर की भाँति मँडरा रहे थे। उन्होंने कहा—"अरे, माताजी हैं।" वह आगे बढ़े। माताजी से मिले, और बसतलाल को बुलाकर उनसे मिलाया। परिचय दिया, तारीफ़ की।

माताजी ने कहा—"मुझे तो पढ़ने-लिखने का समय नहीं मिलता, किंतु मेरी कन्या आपके लेख बडे चाव से पढ़ती रहती है। आपसे मिलने से बड़ा आनन्द हुआ।"

उन्होंने बसतलाल का कन्या से भी परिचय करा दिया। फिर दोनों मित्रों को चाय का निमत्रण देकर आगे बढ़ गई। बसंतलाल ने सब कुछ पा लिया।

(३)

चाय पान तो हुआ ही, साथ ही बहुत-सी गप-शप भी हुई। बसंतलाल ने देखा, हेमलता केवल अद्वितीय सुंदरी ही नहीं, असाधारण बुद्धिमती और विदुषी भी है। पीछे उन्हें यह भी मालूम हो गया कि वह बी० ए० की तैयारी मे है।

कन्या भी बसंतलाल के रूप-गुण, सरलता, और भावुकता से बहुत प्रभावित हुई। उसकी आँखों के लजीले भाव, मद-मंद हँसने की अदा और क्षण-क्षण पर गोरे-गोरे गालों पर खेल

करने वाली लाली ने बसंतलाल को कुछ और ही तत्व समझा दिया। बसंतलाल की आत्मा मानो झकझोरी-सी गई। वह कुछ विकल, कुछ चंचल और कुछ अप्रतिभ-से होकर उस दिन वहाँ से उठ आए, पर उस चितेरी की चितवन की कूंची से जो चित्र चित्त पर चित्रित हो गया था, वह मिटाए नहीं मिटता था।

परन्तु मिलने और आने-जाने का रास्ता तो खुल ही गया था। वह खुला ही रहा। प्रायः प्रत्येक संध्या उनकी वहीं बीतती कभी-कभी भोजन भी वहीं होता। अनेक बार उन्हें बालिका से एकांत में बात करने का अवसर भी मिला। अतत' उन्होंने अपना निवेदन कन्या से कह दिया। कन्या ने लजीले स्वर मुस्किराकर कहा—"जहाँ माता-पिता विवाह कर दें, वहीं ठीक है।" उसकी लाज और मुस्किराहट की गंगा-यमुना के बीच अनुमति की सरस्वती छिपी हुई सरसा रही थी।

बसंतलाल ने मानो चाँद पाया। उन्होंने धरानदजी के द्वारा सदेश भेजा। इस संदेश पर विचार होने लगा। उनके कुल-बंश और आय-व्यय की जाँच होने लगी। अंत में एक दिन कन्या की माता ने कह दिया—"और सब तो ठीक है, पर इनकी आमदनी यथेष्ट नहीं, यही बात विचारणीय है।"

बसंतलालजी की आय दो सौ रुपए माहवार थी। यही उनकी सपत्ति थी। इसमें संदेह नहीं कि अपनी मौजूदा आमदनी को लेकर वह रायसाहब की अमीरी में पली पुत्री हेमलता को सुख से नहीं रख सकते थे। पर यह बात उन्होंने हेमलता से कह दी थी, और हेमलता ने उन्हें आश्वासन दिया था—"हम लोग सीधे-सादे ढंग से रहेंगे, लिखे-पढ़ेंगे, काव्य और साहित्य में मस्त रहेंगे, दुनिया को हेच समझेंगे, मैं धन-दौलत नहीं चाहती, तुम्हें प्यार करती हूँ। और, ईश्वर चाहेगा, तो हमारी आमदनी

बढ़ते देर न लगेगी। मैं विवाह रुपए से नहीं, तुमसे करना चाहती हूँ।"

परन्तु यह सब व्यर्थ हुआ। बसंतलाल की बात स्वीकार नहीं की गई। हेमलता की माता का हठ था कि २५ हजार मूल्य की जायदाद मेरी लड़की के नाम जो कर देगा, उसी के साथ मैं शादी कर सकती हूँ। यदि वसंतलाल हेमलता से विवाह करना चाहते हों, तो २५,००१) का एक मकान खरीद कर पहले उसके नाम लिख दें। जो मेरी कन्या को आलीशान मकान में नहीं रख सकता, वह उसे पाने के योग्य कदापि नही।

वसतलाल अति मर्माहत होकर लाहौर से चले आए। चलती बार उन्होंने हेमलता से अंतिम भेंट की, उस में दोनों आंसुओं का ही विनिमय कर सके।

(४)

बारह बरस बाद।

वसंतलाल अब हिंदी-साहित्य-आकाश मे सूर्य की भांति देदीप्यमान थे। लाहौर मे अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की धूम थी। बसतलाल सभापति बनकर आए थे। उनके रूप-रंग मे बहुत अन्तर हो गया था। अपनी लिखी पुस्तकों से उन्हें हजारों रुपए महीने की आय हो रही थी। कई प्रांतों मे उनकी किताबे एम० ए० तक कोर्स में थीं। बड़े-बड़े राज-परिवारों मे उनकी प्रतिष्ठा थी।

लाहौर-नगर मे उनका जुलूस बड़ी शान के साथ निकला। सम्मेलन सफलता-पूर्वक संपन्न हुआ। आखिरी दिन उन्हें एक पुर्जा मिला। उसमे केवल इतना लिखा था—"पत्र-वाहक के साथ कुछ क्षणों के लिये आइए। अवश्य।"

वसतलाल ने पत्र-वाहक को देखा, एक वृद्ध नौकर था। पूछने

पर उसने बताया, बीबीजी ने बुलाया है। बीबीजी कौन हैं? यह वह नहीं बता सका। उन्होंने इस कार्य के औचित्य पर कुछ-विचार किया, उन्हें कौतूहल हुआ, और अंत मे उन्होंने वहाँ जाने का निर्णय किया। वह उसके साथ चल दिए।

एक गली मे वह उन्हें ले गया। मकान मे घुसकर उन्होंने देखा, मकान साधारण और पुराना है, किन्तु खूब साफ है। दालान मे दो कुर्सियाँ और एक मेज़ पड़ी थीं मेज़ पे एक साफ कपड़ा बिछा था। भृत्य ने कुर्सी पर बैठने को कहा। बंसतलाल के बैठ जाने पर वह भीतर चला गया, और थोड़ी देर में कुछ फल लाकर आगे धर दिए। मन न होने पर भी बंसतलाल ने फल खाए। वह समझ ही न सकते थे कि मामला क्या है।

उन्होंने भृत्य से कहा—"मुझे जिन्होंने बुलाया है, वह कहाँ हैं? मै अधिक ठहर नही सकता।"

बूढ़े ने कहा—"वह क्षण-भर मे अभी आती हैं।"

क्षण भर में वह आई। वंसतलाल ने पहचान लिया। हेमलता है। वह उठ खड़े हुए।

उन्होंने पूछा—"आप? मैंने यही सोचा था।"

हेमलता ने शांत, स्वर मे कहा—"बैठिए, आप प्रसन्न तो हैं?"

वसतलाल ने देखा, वह दुबली, फीकी, रोगी हो रही है। उसके रसीले नेत्रों का वह तेज, सदा हँसते हुए चेहरे की वह चमक सब मिट चुकी है। आँखों के चारों ओर कालौंस दौड़ रही है। वह रूप-लावण्य जाता रहा है।

उनका कलेजा हिल गया। हेमलता की बात उन्होंने सुनी नहीं। उन्होंने पूछा—"परन्तु आपको मैं इस दशा में देखने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं करता था!"

हेमलता ने हँस कर कहा—"आप साहित्यिक है अवश्य, किंतु

सभी बातों की कल्पना- तो आप कर नहीं सकते। कवि की कल्पनाएँ तो काल्पनिक होती हैं। वस्तु-दर्शन तो दुखियों को ही होता है।"

बसन्तलाल उस हँसी को न देख सके, उनकी आँखे भर आईं हेमलता भी रोई।

बसतलाल ने उसे अपने जीवन की व्यथा कहने को विवश किया। उन्होंने पूछा—"तुम्हारे पति कहां हैं ?"

"जेल मे। कुछ जाल करने के जुर्म मे उन्हें ७ वर्ष की जेल हुई है। अभी २॥ वर्ष ही व्यतीत हुआ है।"

"मैने सुना था, उनकी बहुत जायदाद थी, और वह बडे आदमी थे। किसी स्टेट मे सेक्रेटरी थे।"

अपनी जायदाद मेरे नाम लिखकर ही उन्होंने मुझसे व्याह करने मे कामयाबी हासिल की थी, क्योंकि माताजी की कमजोरी को उन्होंने ठीक समझ लिया था। पर पीछे मालूम हुआ कि जायदाद उनकी सब पहले ही रेहन थी, उन पर काफी कर्ज था। उनका वह हिबेनामा पीछे नाजायज ठहरा, सब जायदाद नीलाम हो गई। कुछ भी न बचा। उन्हें शराब पीने की अजहद आदत थी, और शराब के साथ जो दुर्गुण हो जाते हैं, वे भी उनमे आ गए थे। नौकरी जाती रही। मुझे माताजी से जो कुछ मिला था, वह भी खर्च हो गया।"

"माताजी कहाँ हैं ?"

उनका तो स्वर्गवास हो गया।

बसतलाल का कलेजा मुँह को आ रहा था। उन्होंने कहा—"क्षमा करना, मै जानना चाहता हूँ कि आप की गुजर कैसे होती है ? रंग-ढंग से तो कुछ-कुछ समझ गया हूँ।"

हेमलता ने ठंडी सांस भरकर कहा—"यहां कन्या-पाठशाला मे एक नौकरी मिल गई है। १००) मिलते हैं। पॉच बच्चे हैं। उनकी पढ़ाई मे भी काफी खर्च हो जाता है।"

बसतलाल चुपचाप कुछ सोचने लगे। उन्होंने आँख उठाकर हेमलता को देखना चाहा, पर देख न सके।

हेमलता ने हँस कर पूछा—"वह कैसी हैं ? कभी दिखलाइगा नहीं ?"

वसतलाल भी हंस दिए। उन्होंने एक बार हेमलता की ओर देखा, और फिर अन्यत्र देखते हुए कहा—"विवाह मेरे भाग्य मे न था, लता। मैंने जीवन-भर अविवाहित रहने का प्रण करके ही लाहौर छोड़ा था।"

हेमलता के सुन्दर होठ कॉपने लगे। उसने उसी भाँति कॉपते हुए कहा—"क्यों ?"

"क्या भूल गई ? उस रोज़ हम लोगों ने क्या प्रतिज्ञा की थी ? तुमने कहा था, मर्द कभी प्रतिज्ञा नहीं निबाहते। उस समय मै चुप होगया था। आज भी चुप हूँ। जीवन के अन्त मे यदि मिल सकोगी, तो कहूँगा—देखो यह मर्द की प्रतिज्ञा !"

हेमलता की ऑखो से झर-झर ऑसू बहने लगे। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह न सकी। वह बड़ी देर तक रोती रही।

कुछ देर बाद साहस करके बसंतलाल ने कहा—"लता, क्या तुम्हारे मन मे मेरा कुछ आदर है ?"

"आदर, सिर्फ आदर ?" हेमलता ने ऑसूभरी ऑखों से उन्हें देखकर कहा।

बसंतलाल ने इस बार धरती की ओर ताककर कहा—"हॉ

सकता, सिर्फ आदर ही की बात मैं पूछता हूँ, और कोई बात जबान पर न लाना।"

हेमलता ने कंपित स्वर में कहा—"मैं आपका देवता की भाँति आदर करती हूँ।"

"तब तुम मेरी बात सुनो। पति के लौट आने तक मेरा कुछ धन ग्रहण कर लो।"

हेमलता के आँसू सूख गए। उसने कहा—"मेरा पति पतित तो है, पर मैं पति पद की प्रतिष्ठा की रक्षा करूँगी। आपका धन मैं नहीं लूँगी। मुझे कोई कष्ट नहीं है। परन्तु आप मेरी एक बात मानें, तो कहूँ।

"कहो।"

"आप अवश्य ही ब्याह कर लें। मैं विनती करती हूँ, हा-हा खाती हूँ, यदि मेरा दुख दूर किया चाहते हों।"

वह धरती में पछाड़ खाकर गिर पड़ी, फूट-फूटकर रोने लगीं।

बसंतलाल का धैर्य च्युत हो रहा था। उन्होंने कहा—"उठो लता, मैं तुम्हें छू नहीं सकता। मेरे सामने इतना न तड़पो तुम्हारा यह वेश ही मेरे दर्द के लिये बहुत हैं। अपना अनुरोध भी वापस ले लो। जिस प्रतिष्ठा की रक्षा के विचार से तुम मेरा धन नहीं ग्रहण करतीं, उसी प्रतिष्ठा की रक्षा के विचार से इस जन्म में मैं विवाह नहीं कर सकता। हेमलता, ईश्वर जानता है, मैं तुम्हारी अपेक्षा अधिक सुखी हूँ। अफसोस यही है, तुम्हें उस सुख में से कुछ भी नहीं दे सकता।"

हेमलता कुछ देर धरती में पड़ी रही। बसंतलाल कुछ देर सोचते बैठे रहे। फिर आकर खड़े हुए। उन्होंने कहा—"उठो लता तुम महावीर स्त्री हो, तुम धन्य हो। मुझे हँसकर विदा दो। मैं जा रहा हूँ।"

हेमलता ने ठंडी सांस भरकर कहा—"यहां कन्या-पाठशाला में एक नौकरी मिल गई है। १००) मिलते हैं। पाँच बच्चे हैं। उनकी पढ़ाई में भी काफ़ी खर्च हो जाता है।"

बसंतलाल चुपचाप कुछ सोचने लगे। उन्होंने आँख उठाकर हेमलता को देखना चाहा, पर देख न सके।

हेमलता ने हँस कर पूछा—"वह कैसी हैं ? कभी दिखलाइगा नहीं ?"

बसंतलाल भी हंस दिए। उन्होंने एक बार हेमलता की ओर देखा, और फिर अन्यत्र देखते हुए कहा—"विवाह मेरे भाग्य में न था, लता ! मैंने जीवन-भर अविवाहित रहने का प्रण करके ही लाहौर छोड़ा था।"

हेमलता के सुन्दर होंठ काँपने लगे। उसने उसी भाँति काँपते हुए कहा—"क्यों ?"

"क्या भूल गई ? उस रोज़ हम लोगों ने क्या प्रतिज्ञा की थी ? तुमने कहा था, मर्द कभी प्रतिज्ञा नहीं निबाहते। उस समय मैं चुप होगया था। आज भी चुप हूँ। जीवन के अन्त में यदि मिल सकोगी, तो कहूँगा—देखो यह मर्द की प्रतिज्ञा !"

हेमलता की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। वह बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह न सकी। वह बड़ी देर तक रोती रही।

कुछ देर बाद साहस करके बसंतलाल ने कहा—"लता, क्या तुम्हारे मन में मेरा कुछ आदर है ?"

"आदर, सिर्फ़ आदर ?" हेमलता ने आँसूभरी आँखों से उन्हें देखकर कहा।

बसंतलाल ने इस बार धरती की ओर ताककर कहा—"हाँ

लता, सिर्फ आदर ही की बात मै पूछता हूँ, और कोई बात जंबान पर न लाना।"

हेमलता ने कपित स्वर मे कहा—"मै आपका देवता की भॉति आदर करती हूँ।"

"तव तुम मेरी बात सुनो। पति के लौट आने तक मेरा कुछ धन ग्रहण कर लो।"

हेमलता के ऑसू सूख गए। उसने कहा—"मेरा पति पतित तो है, पर मै पति पद की प्रतिष्ठा की रत्ता करूँगी। आपका धन मै नहीं लूंगी। मुझे कोई कष्ट नही है। परन्तु आप मेरी एक बात मानें, तो कहूँ।

"कहो।"

"आप अवश्य ही ब्याह कर ले। मै विनती करती हूँ, हा-हा खाती हूँ, यदि मेरा दुख दूर किया चाहते हो।"

वह धरती मे पछाड़ खाकर गिर पडी, फूट-फूटकर रोने लगीं।

वसंतलाल का धैर्य च्युत हो रहा था। उन्होंने कहा—"उठो लता, मै तुम्हे छू नहीं सकता। मेरे सामने इतना न तड़पो तुम्हारा यह वेश ही मेरे दर्द के लिये वहुत हैं। अपना अनुरोध भी वापस ले लो। जिस प्रतिष्ठा की रक्षा के विचार से तुम मेरा धन नहीं ग्रहण करतीं, उसी प्रतिष्ठा की रत्ता के विचार से इस जन्म मे मैं विवाह नहीं कर सकता। हेमलता, ईश्वर जानता है, मैं तुम्हारी अपेत्ता अधिक सुखी हूँ। अफसोस यही है, तुम्हें उस सुख में से कुछ भी नहीं दे सकता।"

हेमलता कुछ देर धरती मे पड़ी रही। वसतलाल कुछ देर सोचते वैठे रहे। फिर आकर खडे हुए। उन्होंने कहा—"उठो लता तुम महावीर स्त्री हो, तुम धन्य हो। मुझे हँसकर विदा दो। मै जा रहा हूँ।"

हेमलता उठ खड़ी हुई। उसने आँचल सिर पर खिसकाकर ठीक किया। उसकी आँखों मे वेदना और करुणा नाच रही थी। उसने कहा—"जा ही रहे हो ?"

"हाँ लता।"

"कभी पत्र लिखूँ ?"

"नहीं ऐसा कभी न करना।"

"कभी मिलोगे ?"

"नहीं, कभी नही।"

"कभी नहीं।"

"नहीं,कभी नही।"

कुछ देर वह चुप रही। उसके नेत्रों मे एक अद्भुत ज्योति चमकी। उसने धरती पर बैठकर बसंतलाल के चरण छुए, माथा टेका, फिर कहा—

"आशीर्वाद तो दोगे ?"

"सदैव।"

वह कहे तो ?

अनारकली में उस की एक आलीशान कपड़े की दूकान थी। वह एक उच्च वंश का खत्री था। उसकी आयु २२ वर्ष के लगभग होगी। गोर रंग, छरहरा बदन, काली, चमकीली आँखें, ऊँची नाक और मोती-से दाँत थे। वह एक लखपती व्यापारी का बेटा था। एकलौता कहना चाहिये। घर में अकेला था। सबका प्यारा, आँखों का तारा। उसकी की शिक्षा बहुत मामूली थी। पुराने विचार के धनी लोग यह समझते है कि लड़कों को नौकरी-पेशे के लिये पढ़ाया जाता है। पिता ने उसे इतनी ही शिक्षा देना काफी समझा, जिससे वह दूकान के काम-काज और हिसाब किताब में उसकी मददकर सके। फिर भी वह बुद्धिमान् और प्रतिभा-संपन्न था, उसकी प्रकृति गभीर थी, और वह निरतर कुछ सोचा करता था। फिर भी उसने दूकान के काम को अनायास ही सँभाल लिया। वह चतुराई और तत्परता से सब काम झटपट कर डालता था। उसके विनयी स्वभाव और सद्व्यवहार से ग्राहक और नौकर, सभी सतुष्ट थे। वह सबके विश्वास, प्रेम तथा आदर का पात्र था। उसके पिता को उस पर गर्व था। उसने अपने

जीवन-भर की कमाई वह दूकान उसे सौंप दी थी। वह दूकान पर आता जरूर था, परन्तु गद्दी पर बैठा-बैठा सिर्फ माला ही जपा करता था। कार-बार सब कुछ बंसी के हाथ था। हाँ उसका नाम बंसीधर था।

बसी मे एक असाधारण दोष था। उसको दोष कहना चाहिए या नहीं, यह नही कहा जा सकता। परन्तु उसका पिता—जो सब से अधिक प्यार करता था, और उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाता था—उसके इस दोष की ढोल पीटकर निंदा किया करता था, इसलिये हमे भी उसे दोष ही मानना पड़ा। परन्तु आजकल के अशिक्षित नवयुवक उसे दोष नहीं, गुण कहते हैं। हाँ, बंसी-जैसे अल्पशिक्षित नवयुवक के लिये यह एक दोष ही समझा जा सकता था, क्यों कि धनी बाप के बेटे के लिए यह एक नई-सी बात थी। वह दोष यह था कि वह स्त्रियों से दूर भागता था, और ब्याह के नाम से भड़कता था। मां-बाप ब्याह की चर्चा चलाते, तो वह रूठकर खाना-पीना छोड़ देता या रोने लगता। और, दूसरे आदमी अगर इस चर्चा को छेड़ते, तो वह छूटते ही गालियाँ देता और कभी-कभी खीजकर मारने को दौड़ता। फलतः विवाह उसकी एक चिढ़ होगई थी। विवाह के नाम पर मा-बाप उसकी निंदा किया करते और यार-दोस्त चिढ़ाया करते थे।

(२)

दिन बीत रहे थे, और यह बात पुरानी हो रही थी। गर्मी के दिन थे, संध्या का समय। दो स्त्रियाँ धीरे-धीरे आईं, और दूकान पर बैठ गईं। दूकान पर बहुत भीड़ थी, बसी को ग्राहकों से फ़ुर्सत नहीं थी। उन स्त्रियों मे एक वृद्धा थी, और दूसरी अज्ञात-यौवना। पंजाब के स्वास्थ्य-वर्द्धक जल-वायु मे पलने के कारण उसके चेहरे का रग सेब की भाँति रंगीन हो रहा था। उस गोरे,

सुडौल और आरोग्यता की लाली से भरे हुए चेहरे पर आम की फाँक के समान बड़ी-बड़ी आँखे और कोमल, नोकदार नाक बहुत ही शोभा पा रही थी। बालिका के शरीर मे यौवन ऊधम मचा रहा है, इसकी मानो उसे कुछ खबर ही न थी। वह अपने चिर-सहचर शैशव का पल्ला पकड़े, मानों उस दूकान पर चली आई थी। वह अपनी दादी के साथ कुछ कपड़ा लेने आई थी। उसे इस बात का खयाल भी न था कि उसका यह छलिया सहचर चाहे जब उसे धोका दे सकता है, और अब उसी के भरोसे हाट-बाज़ार मे घूमना उसके लिये निरापद् नही है।

बंसी ने उसकी एक झलक देखी। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसकी एक पसली अपनी जगह से हिल गई हो। एक दर्द जो उसके जीवन की नई चीज़ थी, उसके हृदय मे पैदा हुआ। उसका सारा शरीर पसीने से भर गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह अभी अपनी जगह से गिर जायगा। वह लड़खड़ाता हुआ उठा, और बालिका के बिलकुल नज़दीक आकर बोला—"क्या चाहिए तुम्हें ?" उसके नथने फूल गए, और साँस चढ़ गई। उसकी आँखों से ज्वाला की लहर-सी निकलने लगी। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसे छू लेगा। बालिका बोली—नही। अपरिचित युवक के ऐसे व्यवहार से घबराकर वह सहमी हुई-सी अपनी दादी की ओर देखने लगी। युवक ने बिलकुल पागल की तरह एक के बाद एक थानों का ढेर लगाना शुरू कर दिया। उसके हाथ मशीन की भाँति चल रहे थे। ढेर बढ़ता ही चला जा रहा था। उसकी साँस के साथ ज्वाला निकल रही थी, और हृदय की धुकधुकी बेतरह बढ़ गई थी। उसके पिता और नौकर-चाकरों ने आश्चर्य-चकित होकर युवक की इस चेष्टा को देखा। वृद्धा ने क्रोध से लाल होकर, बालिका का हाथ पकड़कर कहा—"चल

सुहागी, यहाँ ठहरने का कोई काम नही, ये लुच्चे हैं, दूकानदार नहीं।" बुढ़िया क्रोध की विष-भरी दृष्टि से युवक को देखती हुई, लड़की को एक प्रकार से खींचती हुई उठ कर चल दी। उसके जाने पर बंसी के बाप ने गुस्से से चिल्लाकर कहा—"तुम्हारी यह नालायकी खूब रही। किसी की बहू-बेटी की इज्ज़त-आबरू अब तुम्हारी दूकान पर आने पर बचना मुश्किल है। मेरे ही सामने तुम्हारी यह हरकत।" बूढ़ा क्रोध मे आकर उठा, और बंसी को दोनों हाथ से झकझोर डाला। परन्तु बुड्ढे को ज्यादा ज़ोर न लगाना पड़ा, बंसी गिरकर बेहोश हो गया, उसकी आँखे पलट गईं, और साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी।

(३)

कई महीने के उपचार से बंसी कुछ स्वस्थ हुआ। जब तक वह बदहवास रहा, तब तक अस्फुट स्वर मे सुहागी का नाम लेकर कभी हँसने लगता, और कभी इधर-उधर देखने लगता। कभी वह किसी वस्तु या आदमी को लक्ष्य करके और उसी को सुहागी समझकर इस तरह बाते करता, मानो वह दूकान पर बैठा हुआ कपड़े का थान बेच रहा है। वह हँस-हँसकर थानों की तारीफ़ करता, और कहता, ले जा सुहागी, यह तेरे ऊपर खूब सोहेगा।

होश मे आने पर बंसी ने फिर सुहागी का नाम नहीं लिया। धीरे-धीरे वह फिर अपनी दूकान के काम मे लग गया। परन्तु उसका चेहरा पीला ही पड़ता गया, और उसकी आँखे गढ़े मे धँस गईं। उसका खाना-पीना, बातचीत, सब कुछ असंयत हो गया। मानो वह किसी गूढ़ जगत् मे विचर रहा हो। माता-पिता ने बहुत समझाया। विवाह की चर्चा फिर ज़ोरों से चली, पर बंसी ने सुनी अनसुनी कर दी। सुहागी की चर्चा अब सर्वत्र फैल गई है। बहुत लोग नहीं जानते कि सुहागी कौन है, पर अब

रास्ता चलते भी लडके उसे चिढ़ाते हैं, बसी अब चिढ़कर किसी को गाली नहीं देता, न मारने चलता है, वह केवल मुस्करा देता है। वह मुस्किराहट विचित्र-सी है। उसमें वेदना और उन्माद, दोनो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

बसी की विनय और सहृदयता वैसी ही है। वह ठीक समय पर काम भी सब करता है, पर उससे भूलें बहुत होती हैं। वह अब उतना बुद्धिमान्, कुशाग्र-बुद्धि नहीं रह गया।

सुहागी कौन है, कहाँ रहती है, यह जानने की बसी ने कभी चेष्टा नही की। एक दिन उसके एक मित्र ने कहा—"बंसी, एक बात सुनोगे?"

"क्या बात?"

"वही सुहागी की बात।"

बसी मुस्किराकर चुप हो गया।

"सुनोगे?" मित्र फिर कहा।

"कहो।"

"उसका ब्याह कब हो रहा है।"

"ब्याह?"

"हाँ।"

"किसका?"

"सुहागी का।"

"हुश।" बसी ने मुस्किराकर मुँह फेर लिया।

मित्र ने फिर कहा—

"क्या विश्वास नही?"

"होगा।" बसी का स्वर धीमा पड़ गया, जैसे मरते हुए आदमी का हो जाता है।

मित्र ने कहा—"बारात आई है। दूल्हा देखोगे?"

"ना।"

"क्या हानि है ?"

"ना।"

"सुहागी को देखोगे ?"

"ना।"

"एक वार देख न लो ?"

"ना।"

मित्र चला गया।

(४)

छ वर्ष वीत गये। वंसी की हालत मे कुछ भी सुधार हुआ। सुहागी का व्याह हो गया। वह दो वच्चों की मा है। की लगन उससे छिपी नहीं। उसकी सहेलियां उसे पहले की वात कहकर चिढ़ाती थीं। वह उन्हें गाली देती और गु होती थी। अव वह सिर्फ ज़रा हँस-भर देती है। वह बंसी विषय मे किसी से कुछ नहीं पूछती, पर सदैव वंसी के विषय कुछ-न-कुछ जानने को आतुर रहती है। उसकी वह 'गु अत्यंत गोपनीय है।

वह एक वर्ष वाद फिर लाहौर आई। उसकी सहेलियों बंसी के हालत वताए। सुहागी ने एक बार साहस करके अन्तरंग सखी बुंदन से कहा—"बुंदन, चल, ज़रा उस तेरे को देखें तो कैसा है।"

"देखोगी ? पर अब वह पहले-सा छैल नहीं है।"

"देखूंगी तो भी।"

"कपड़ा खरीदना पड़ेगा।"

"खरीदूंगी।"

"और जो वह उसी तरह........"

"चाहे जो हो, देखूंगी जरूर · "

तीन-चार सखी चलीं--इठलाती, ठठोली मारती। सुहागी ने बढ़िया चोली कसी, जरी-काम का सलवार पहना, गोटे की ओढ़नी ओढ़ी। सब गहने सजे। वह सखियों के साथ बंसी को देखने चली। सब हँसती थीं, वह भी हँसती थी। सब कहतीं, वह काठ का उल्लू है। सुहागी भी उनके स्वर में स्वर मिलाती थी।

अनारकली में सब उसकी दूकान के सामने आ खड़ी हुईं। सुबह का वक्त था। बसी वहां अकेला ही बैठा था। उसने सुहागी को न पहचाना। वह अब अल्हड़ बालिका न थी, दो बच्चों की माता थी। वह अब कुमारी न थी, युवती थी।

बुंदन ने आगे बढ़कर कहा--"पहचानते हो?"

बसी ने अकचकाकर कहा--"किसे?"

"सुहागी को।"

"सुहागी को? कौन है सुहागी?"

कनक ने मुस्किराकर, उँगली के संकेत से बता कर कहा--"वह सुहागी है।"

"वह।" बसी की मानो श्वास रुक चली।

कनक ने प्रगल्भता से कहा--"सदा सुहागी-सुहागी बका करते हो, दे दो न यह थान उठाकर उसे।"

बसी ने सामने पड़ा हुआ मखमल का थान उठाकर सुहागी के आगे धर दिया।

कनक ने कहा--"बस, एक ही थान?"

बसी ने थानों के ढेर लगा दिए।

सुहागी बोली नहीं, हँसी भी नहीं। वह चुपचाप वहां से चल दी। थान उसने छुए भी नहीं। बसी मन्त्रबद्ध सर्प की

८

आर्ति पीछे-पीछे चल दिया। नगर के गली-बाजार समाप्त आए। रावी का किनारा आ गया। सामने रावी का गहरा ज उछलता हुआ जा रहा था।

कनक ने पीछे फिरकर कहा—"हमारे पीछे क्यों लगे हो जाओ अपना रास्ता देखो।"

बंसी ने सूखे कंठ से सुहागी की ओर देखकर कहा—"व कहे, तो लौट जाऊँ।"

"वह कहे, तो रावी में कूद पड़ोगे?"

"वह कहे, तो"

हठात् सुहागी की जबान खुली, उसने कहा—"कूद पड़ो।"

उसी क्षण बंसी अगम जल में था, और दूसरे क्षण सुहागी दोनों प्रेम-जल-समाधि में लीन थे॥

पंजाब की युवतियाँ रावी के तट पर जब जाती हैं, प्रेमियों के गीत गाती हैं। कदाचित् दोनों की आत्मायें जल-से उन्हें सुन-सुनकर प्रसन्न होती हैं।

——o——

स्थायी ग्राहक नियम !

१ कोई भी हिन्दी प्रेमी पाठक या पुस्तकालय १) भेज कर प्रभात-प्रकाशन के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं पुस्तकालय का पहला आर्डर ४०) का होनेपर उनसे १)फीस का न लिया जायगा।

२ स्थायी ग्राहक को हम अपनी प्रकाशित पुस्तकों तथा छात्र हितकारी पुस्तक माला, गगा पुस्तक माला, विद्या भास्कर बुक डिपो प्रकाशन पर [चार आने रुपया] तथा प्रचारित पुस्तकों पर तीन आने रुपया एव अन्य हिन्दुस्तान भर की हिन्दी की जनरल पुस्तकों पर डेढ़ आना प्रति रुपया और कोर्स की पुस्तकों पर दो पैसा प्रति रुपया कमीशन देंगे।

३. स्थायी ग्राहक के आर्डर का २५) का माल होने पर सवारी गाड़ी का किराया हम देंगे। परन्तु डाक से मगाने पर खर्च उन्हें ही देना होगा।

४, स्थायी ग्राहकों को हम प्रति मास में हिन्दी की नई प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की सूचना प्रति मास दे देंगे। जिससे उनका ज्ञान सर्वदा ताजा रहे।

५ स्थायी ग्राहक को वर्ष भर में ५) की हमारी प्रकाशित पुस्तकें खरीदनी आवश्यक है।

६. २०) से ऊपर के आर्डर के साथ ५) पेशगी आना आवश्यक हैं। अन्यथा आर्डर पर ध्यान न दिया जायगा।

७. पुस्तकों की कमी और युद्ध जनित कठिनाइयों के कारण हम प्रत्येक प्रकाशक की सिर्फ प्राप्त पुस्तकें ही भेजेंगे।

नोट—साधारण ग्राहक को हम स्थायी ग्राहक नियम नम्बर दो का आधा कमीशन देंगे, पर व्यर्थ की लिखा पढ़ी से बचने के लिए पेशगी अवश्य भेजना चाहिए। पुस्तक सूचीपत्र लिखकर मगायें।